दृष्टि The Vision

BPSC Series Book-1

बिहार, भारत का इतिहास एवं कला-संस्कृति

BPSC सहित अधीनस्थ सेवाओं एवं
एसएससी, एसआई, ईएसआई, सीडीपीओ
सहित अन्य एकदिवसीय परीक्षाओं के लिये संपूर्ण पुस्तक

बिहार PCS

प्रिलिम्स कोर्स

मोड : ऑनलाइन/पेन ड्राइव

कोर्स की विशेषताएँ

- देश के सर्वश्रेष्ठ शिक्षकों की टीम द्वारा अध्यापन।
- कोर्स की वैधता 2 वर्षों तक तथा प्रत्येक वीडियो को 3 बार तक देखने की सुविधा।
- हर कक्षा के अंत में उस टॉपिक से संबंधित पूछे गए और पूछे जा सकने वाले प्रश्नों पर चर्चा।
- वीडियो क्लिप्स और विज़ुअल्स की मदद से जटिल विषयों की रुचिकर प्रस्तुति।
- कोर्स के अनुसार तैयार की हुई पाठ्यसामग्री।

अधिक जानकारी के लिये 9311406440 नंबर पर कॉल या वाट्सएप करें

ऑनलाइन क्लास के लिये इंस्टॉल करें
Drishti Learning App

IAS Foundation Course

सामान्य अध्ययन

(प्रिलिम्स + मेन्स)

मोड : ऑनलाइन/पेन ड्राइव

डॉ. विकास दिव्यकीर्ति के निर्देशन में

कोर्स की विशेषताएँ

- डॉ. विकास दिव्यकीर्ति तथा देश के सर्वश्रेष्ठ शिक्षकों की टीम द्वारा अध्यापन।
- डॉ. विकास दिव्यकीर्ति द्वारा एथिक्स (संपूर्ण), राजव्यवस्था (व्यापक अंश) और समाज (सैद्धांतिक पक्ष) का अध्यापन।
- कुल 1200+ घंटों की 500+ कक्षाएँ।
- प्रत्येक कक्षा को 3 बार तक देखने की सुविधा। कोर्स की वैधता बैच शुरू होने से 3 वर्षों तक।
- संशय निवारण के लिये एकेडमिक सपोर्ट टीम की सुविधा उपलब्ध। नियमित रूप से डाउट क्लासेज़ तथा ऑनलाइन मीटिंग्स की भी व्यवस्था।

एडमिशन प्रारंभ | पहले 500 विद्यार्थियों के लिये 25% की छूट

अतिरिक्त जानकारी के लिये 9311406442 नंबर पर कॉल करें या वाट्सएप करें

इंस्टॉलमेंट्स पर भी उपलब्ध ! लॉग-इन कीजिये : www.drishtiIAS.com

ऑनलाइन क्लास के लिये अपने एंड्रॉयड फोन पर इंस्टॉल करें
Drishti Learning App

BPSC Series : Book-1

बिहार, भारत का इतिहास एवं कला–संस्कृति

दृष्टि पब्लिकेशन्स

641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
दूरभाष: 011-47532596, 87501 87501

Website: www.drishtiias.com
E-mail : booksteam@groupdrishti.com

शीर्षक : बिहार, भारत का इतिहास एवं कला-संस्कृति

लेखक : टीम दृष्टि

संस्करण- जनवरी 2021

मूल्य : ₹ 480

ISBN : 978-81-947225-9-5

प्रकाशक

VDK Publications Pvt. Ltd.
(दृष्टि पब्लिकेशन्स)
641, प्रथम तल,
डॉ. मुखर्जी नगर,
दिल्ली-110009

विधिक घोषणाएँ

- इस पुस्तक में प्रकाशित सूचनाएँ, समाचार, ज्ञान एवं तथ्य पूरी तरह से सत्यापित किये गए हैं। फिर भी, यदि कोई जानकारी या तथ्य गलत प्रकाशित हो गया हो तो प्रकाशक, संपादक या मुद्रक उससे किसी व्यक्ति-विशेष या संस्था को पहुँची क्षति के लिये ज़िम्मेदार नहीं है।
- हम विश्वास करते हैं कि इस पुस्तक में छपी सामग्री लेखकों द्वारा मौलिक रूप से लिखी गई है। अगर कॉपीराइट उल्लंघन का कोई मामला सामने आता है तो प्रकाशक को ज़िम्मेदार नहीं ठहराया जाएगा।
- सभी विवादों का निपटारा दिल्ली न्यायिक क्षेत्र में होगा।
- **© कॉपीराइट :** VDK Publications Pvt. Ltd. (दृष्टि पब्लिकेशन्स), सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी अंश का प्रकाशन अथवा उपयोग, प्रतिलिपीकरण, ऐसे यंत्र में भंडारण जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो या स्थानांतरण, किसी भी रूप में या किसी भी विधि से (इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या किसी अन्य प्रकार से) प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना नहीं किया जा सकता।
- एम.पी. प्रिंटर्स, बी-220, फेज़-2, नोएडा (उत्तर प्रदेश) से मुद्रित।

दो शब्द

प्रिय पाठको,

अपनी स्थापना के समय से ही हमारा उद्देश्य यही रहा है कि हम आप पाठकों को श्रेष्ठ गुणवत्ता की पाठ्य-सामग्री उपलब्ध करा सकें। इसी संकल्प के साथ हम अपनी यात्रा में बढ़ते गए। हमें इस बात की खुशी है कि इस यात्रा में आप पाठकों का अपार स्नेह प्राप्त हुआ, जिससे हमें और आगे बढ़ने तथा नए प्रयोगों को आज़माने का हौसला मिला। हमारे विभिन्न प्लेटफॉर्म्स पर विद्यार्थी हमसे संवाद करते हैं और अपनी बात हम तक पहुँचाते हैं। हम इन संवाद पर गंभीरता से विचार करते हैं तथा हमारी कोशिश रहती है कि आपके अधिक से अधिक जायज़ सुझावों को मूर्त रूप प्रदान कर दिया जाए। इसी सिलसिले में लंबे समय से यह मांग हमारे पास आ रही थी कि हम 'बिहार संयुक्त (प्रारंभिक एवं मुख्य) प्रतियोगिता परीक्षा' (बीपीएससी) के लिये भी पुस्तकों का प्रकाशन करें। हमारी भी इस बात को लेकर सहमति थी कि विद्यार्थियों के बीच श्रेष्ठ कंटेंट उपलब्ध होना ही चाहिये। हम जब भी कोई नई शुरुआत करते हैं तो हमारी कोशिश यही रहती है कि हम श्रेष्ठ गुणवत्ता की पाठ्य-सामग्री के अपने संकल्प से किसी भी कीमत पर समझौता न करें, इसलिये इस प्रस्ताव पर हम लंबे समय से काम कर रहे थे, लेकिन अनेक चरणों से गुज़रने के बाद जब हम इस बात को लेकर आश्वस्त हो गए कि ये पुस्तकें आपके संघर्ष को आसान करने में सक्षम हैं, तब हमने इनके प्रकाशन का निर्णय लिया।

अब, हम आपके समक्ष एक नई पुस्तक सीरीज़ के साथ उपस्थित हैं, जो न केवल 'बिहार संयुक्त (प्रारंभिक एवं मुख्य) प्रतियोगिता परीक्षा' को संपूर्णता से कवर करती है बल्कि यहाँ की अधीनस्थ/एकदिवसीय परीक्षाओं के लिये भी समान रूप से उपयोगी है। यह कुल **आठ पुस्तकों** की एक सीरीज़ है, जिसकी पहली कड़ी के रूप में **'बिहार, भारत का इतिहास एवं कला-संस्कृति** की पुस्तक अब आपके हाथों में है। विशिष्ट रूप से इस पुस्तक की चर्चा के पूर्व हम आपको संक्षेप में इस सीरीज़ की कुछ विशेषताओं से अवगत कराना चाहेंगे, ताकि आप इसकी उपयोगिता और अपनी तैयारी में इसके महत्त्व का ठीक-ठीक अनुमान कर सकें।

यह सीरीज़ बिहार संयुक्त प्रतियोगिता परीक्षा के संपूर्ण पाठ्यक्रम (प्रारंभिक एवं मुख्य परीक्षा) को तो कवर करती ही है, साथ ही हमने इसमें उन अतिरिक्त तथ्यों एवं विषय-वस्तुओं को भी शामिल कर दिया है जो बीपीएससी के पाठ्यक्रम से सुसंगत हैं और बिहार की प्रमुख अधीनस्थ/एकदिवसीय परीक्षाओं के लिये काफी महत्त्वपूर्ण हैं। इससे आपकी बिना अतिरिक्त मेहनत के अन्य परीक्षाओं की भी तैयारी हो जाएगी और बीपीएससी पर मुख्य फोकस भी बना रहेगा। इस सीरीज़ की प्रत्येक पुस्तक लगभग 400-600 पृष्ठों की है। प्रथमद्रष्टया आपको यह आकार बड़ा लग सकता है लेकिन ऐसा इसलिये है ताकि एक ही स्रोत से आपकी पूरी तैयारी हो सके। जब आप इसे पढ़ेंगे तो इस बात को महसूस कर पाएंगे।

अब, प्रस्तुत पुस्तक की बात करें तो यह इतिहास एवं कला-संस्कृति के संपूर्ण पाठ्यक्रम को कवर करती है। विशेषज्ञों की हमारी टीम ने इस विषय से संबंधित सभी महत्त्वपूर्ण मानक पुस्तकों का अध्ययन कर आयोग की मांग के अनुरूप उसके सार को (बिहार के विशेष संदर्भ में) प्रस्तुत किया है। हमारी टीम ने अब तक पूछे गए प्रश्नों का भी गंभीरता से अवलोकन किया है तथा पाठ्य-सामग्री को इसी अनुरूप ढाला है। प्रत्येक अध्याय के अंत में विगत वर्षों में पूछे गए प्रश्नों के साथ-साथ भविष्य के लिये संभावित प्रश्नों का भी संकलन किया गया है। इससे आपको न केवल परीक्षा की प्रकृति का अनुमान हो सकेगा बल्कि आप पढ़े हुए पाठ को रिवाइज़ भी कर सकते हैं। तथ्यों की सटीकता के लिये हमारी टीम ने कई चरणों में इसे जाँचा है तथा इस बात को सुनिश्चित किया है कि पुस्तक तथ्यात्मक त्रुटियों से मुक्त हो। भाषा और प्रस्तुतीकरण के स्तर पर भी हमारी कोशिश यही रही है कि संप्रेषण सहज और बोधगम्य हो।

अंत में यह कि अब यह पुस्तक आपके हाथों में है। इसके अंतिम निर्णयकर्त्ता भी आप ही हैं। आप इसे पढ़ें और अपनी राय हमें बताएँ। इससे हमें और बेहतर करने की प्रेरणा मिलती है। **आप अपनी राय हमें 8130392355 नंबर पर वाट्सएप मैसेज के माध्यम से भेज सकते हैं।**

साभार,

प्रधान संपादक

दृष्टि पब्लिकेशन्स

अनुक्रम

खंड-A: प्राचीन भारत

1. प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत 3 – 12
2. पाषाणयुगीन संस्कृति 13 – 17
3. हड़प्पा सभ्यता 18 – 25
4. वैदिक काल 26 – 34
5. छठी शताब्दी ईसा पूर्व का काल (महाजनपद काल) 35 – 49
6. मौर्य साम्राज्य 50 – 62
7. मौर्योत्तर काल 63 – 72
8. संगम काल 73 – 76
9. गुप्त साम्राज्य 77 – 85
10. गुप्तोत्तर काल 86 – 93
11. दक्षिण भारत 94 – 98
12. पूर्व-मध्यकालीन भारत 99 – 110

खंड-B: मध्यकालीन भारत

13. मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्रोत 3 – 9
14. भारत में तुर्कों का आगमन 10 – 12
15. दिल्ली सल्तनत (1206-1526 ई.) 13 – 35
16. क्षेत्रीय शक्तियाँ: 13वीं-15वीं सदी 36 – 40
17. विजयनगर एवं बहमनी साम्राज्य 41 – 49
18. भक्ति एवं सूफी आंदोलन 50 – 55
19. मुगल साम्राज्य और शेरशाह 56 – 80
20. मराठा साम्राज्य 81 – 86

खंड-C: आधुनिक भारत

21. यूरोपीय कंपनियों का भारत आगमन 3 – 7
22. ब्रिटिशकालीन प्रमुख अधिनियम तथा प्रशासक 8 – 23
23. ब्रिटिश कंपनी द्वारा भारत विजय 24 – 36
24. ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीति 37 – 40
25. ब्रिटिश शासन का भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव 41 – 56
26. ब्रिटिश शासन का भारतीय समाज पर प्रभाव 57 – 79
27. ब्रिटिश शासन के प्रति भारतीयों की प्रतिक्रिया 80 – 106
28. आधुनिक भारत में सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन 107 – 120
29. राष्ट्रवाद का उदय 121 – 131
30. राष्ट्रीय आंदोलन का प्रथम चरण 132 – 144
31. राष्ट्रीय आंदोलन का द्वितीय चरण 145 – 180
32. राष्ट्रीय आंदोलन में मज़दूरों एवं महिलाओं की सहभागिता 181 – 191
33. गणतंत्र के रूप में भारत का उदय 192 – 195
34. स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् के प्रमुख घटनाक्रम 196 – 204
35. वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय विदेश नीति 205 – 216
36. भारत एवं बिहार के प्रसिद्ध व्यक्तित्व 217 – 248

खंड-D: कला एवं संस्कृति

37. कला एवं संस्कृति : एक परिचय 3 – 7
38. भारतीय वास्तुकला 8 – 19
39. भारतीय मूर्तिकला 20 – 31
40. भारतीय चित्रकला 32 – 39
41. भारतीय नृत्य, संगीत एवं रंगमंच कलाएँ 40 – 56
42. भारतीय सिनेमा, युद्धकला एवं खेल 57 – 63
43. विविध 64 – 100

खंड A

प्राचीन भारत

(बिहार के विशेष संदर्भ सहित)

1 प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत
(Sources of Ancient Indian History)

प्राचीन भारतीय इतिहास के लेखन के लिये हमें साहित्य, पुरातात्त्विक साक्ष्य तथा विदेशी विवरणों की आवश्यकता होती है। इन स्रोतों के अभाव में इतिहास लेखन की प्रामाणिकता की पुष्टि नहीं की जा सकती है। दुर्भाग्यवश इस संबंध में उपयोगी सामग्री बहुत ही कम उपलब्ध है। प्राचीन भारतीय इतिहास में ऐसे ग्रंथों का प्रायः अभाव-सा है जिन्हें आधुनिक परिभाषा में इतिहास की संज्ञा दी जाती है। इतिहास लेखन के अपने कुछ विशिष्ट मानक होते हैं, जिनका पालन आवश्यक है। इतिहास लेखन की कुछ सामान्य विशेषताएँ इस प्रकार देखी जा सकती हैं– (1) काल बोध, (2) क्षेत्र बोध, (3) तथ्यों का ब्यौरा एवं तथ्यों के स्रोतों का हवाला देना, (4) ब्यौरे का विश्लेषण, (5) पूर्वाग्रहों से मुक्त लेखन आदि।

ऐतिहासिक स्रोत (Historical Source)

प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोतों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जाता है–

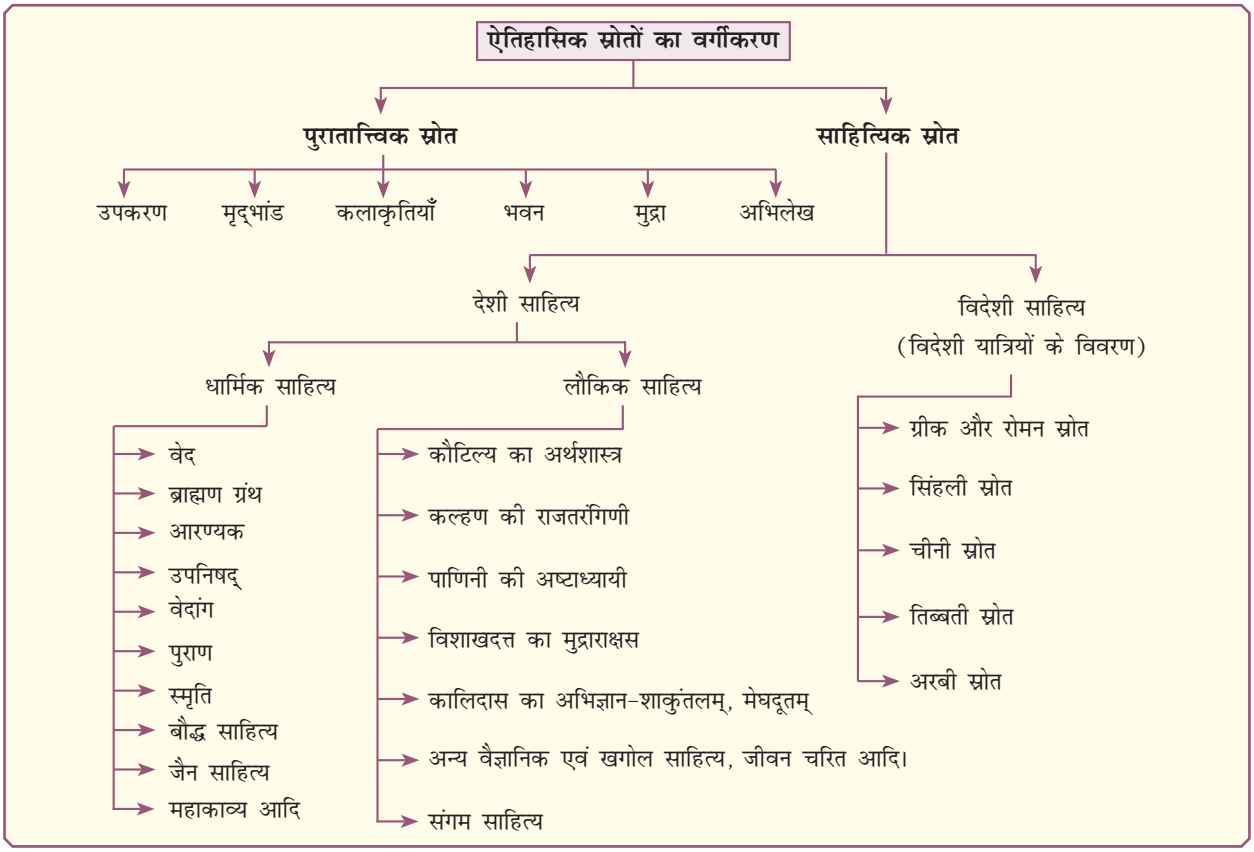

प्रागैतिहासिक काल का इतिहास लिखते समय पुरातात्त्विक साक्ष्यों पर निर्भर रहना पड़ता है। आद्य इतिहास लिखते समय पुरातात्त्विक एवं साहित्यिक दोनों प्रकार के साधनों का उपयोग होता है तथा ऐतिहासिक काल का इतिहास लिखते समय इन दोनों स्रोतों के अतिरिक्त विदेशी लेखकों के वर्णनों का भी सहयोग लिया जाता है। विदेशी यात्रियों के वर्णन भी साहित्यिक साधन हैं, लेकिन उनके विस्तृत वर्णन की उपयोगिता को देखते हुए उनका अलग शीर्षक के अंतर्गत उल्लेख किया गया है।

पुरातात्त्विक स्रोत *(Archaeological sources)*

पुरातात्त्विक स्रोत निम्नलिखित रूप में है-

उपकरण

मुख्यतः उपकरणों के आधार पर ही हम पुरापाषाण काल से नवपाषाण काल तक का अध्ययन कर पाते हैं। पत्थर से बने उपकरणों के बाद जब धातु का प्रयोग होता है तो इसका संबंध सभ्यता के विकास से जोड़ा जाता है। 3000 ईसा पूर्व तक आते-आते तांबे और टिन को मिलाकर

- स्मृतियों में **सबसे प्राचीन** एवं **प्रामाणिक 'मनुस्मृति'** मानी जाती है। यह **शुंग काल** का मानक ग्रंथ है।
- जातक में **बुद्ध के पूर्वजन्म** की कहानी वर्णित है। जैन साहित्य को **आगम** कहा जाता है।
- **'अर्थशास्त्र'** के लेखक **चाणक्य (कौटिल्य)** हैं। इससे मौर्यकालीन इतिहास की जानकारी प्राप्त होती है।
- प्रमुख यूनानी-रोमन लेखकों में **टेसियस**, **हेरोडोटस**, **मेगास्थनीज**, **टॉलमी**, **प्लिनी** आदि हैं।
- हेरोडोटस को **'इतिहास का पिता'** कहा जाता है। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक **हिस्टोरिका** में 5वीं शताब्दी ईसा पूर्व के भारत-फारस के संबंध का वर्णन है।
- टॉलमी ने दूसरी शताब्दी में **'भारत का भूगोल'** नामक पुस्तक लिखी।
- प्रमुख चीनी लेखकों में **फाह्यान**, **सुंगयून** (518 ई. में भारत आया) व **ह्वेनसांग** हैं।
- ह्वेनसांग के अध्ययन के समय नालंदा विश्वविद्यालय के कुलपति आचार्य **शीलभद्र** थे।
- अरबी लेखकों में **अलबरूनी** (पुस्तक: **किताब-उल-हिंद**) और **इब्नबतूता** (पुस्तक: **रेहला/रिहूला**) प्रमुख हैं।
- पाणिनी प्राचीन भारत के प्रसिद्ध भाषा विज्ञानी और व्याकरण शास्त्री थे।
- कौटिल्य का अर्थशास्त्र मुख्यत: 15 अधिकरणों में विभाजित है।
- कौटिल्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र के अनुसार, "सीताभूमि" का अभिप्राय- जनजातियों द्वारा जोती जाने वाली भूमि से है।
- ह्वेनसांग की भारत यात्रा के समय सूती कपड़ों के उत्पाद के लिये सबसे प्रसिद्ध नगर मथुरा था।
- ऋग्वेद का 9वाँ मंडल पूर्णत: सोम को समर्पित है।
- गायत्री मंत्र ऋग्वेद नामक पुस्तक में मिलता है।
- जूनागढ़ अभिलेख में रुद्रदामन प्रथम की विभिन्न उपलब्धियाँ वर्णित है। जूनागढ़ अभिलेख से यह साबित होता है कि चंद्रगुप्त का प्रभाव पश्चिम भारत तक फैला था।
- भाब्रु स्तंभ लेख से यह ज्ञात होता है कि अशोक ने स्वयं को मगध का सम्राट बताया है।
- मिलिंदपन्हो नामक साहित्यिक स्रोत जो प्राचीन भारत के व्यापारिक मार्गों का वर्णन करने से वंचित रहा।
- अलेक्जेंडर कनिंघम को भारतीय पुरातत्त्व का जनक कहा जाता है।
- विभिन्न अभिलेखों में अशोक का उल्लेख "पियदस्सी एवं देवानामप्रिय" के रूप में किया गया है।
- भीतरी स्तंभ लेख से हूण आक्रमण की जानकारी मिलती है, जिसका सामना स्कंदगुप्त ने किया था।
- 'पेरीप्लस ऑफ द एरिथियन (इरिथ्रयन) सी' पुस्तक के लेखक का नाम ज्ञात नहीं है। इस पुस्तक में भारतीय बंदरगाहों के नाम तथा इनसे आयात व निर्यात की जाने वाली वस्तुओं के नाम लिखे हैं।

बिहार पीसीएस (BPSC) तथा अधीनस्थ सेवाओं में पूछे गए एवं संभावित प्रश्न

1. पेरीप्लस ऑफ द इरिथ्रयन सी किसने लिखी?
   (a) टेसियस (b) प्लिनि
   (c) टॉलमी (d) स्ट्रबो
   (e) उपर्युक्त में से कोई नहीं/उपर्युक्त में से एक से अधिक
   64th BPSC (Pre)

2. चीनी यात्री 'सुंगयून' ने भारत यात्रा की थी-
   (a) 515 ई. से 520 ई. (b) 525 ई. से 529 ई.
   (c) 545 ई. से 552 ई. (d) 592 ई. से 579 ई.
   (e) उपर्युक्त में से कोई नहीं/उपर्युक्त में से एक से अधिक
   60-62rd BPSC (Pre)

3. इंडिका का लेखक कौन था?
   (a) विष्णु गुप्त (b) मेगास्थनीज
   (c) डाइमेकस (d) प्लिनी
   56-59th BPSC (Pre)

4. कल्हण की पुस्तक का नाम क्या है?
   (a) अर्थशास्त्र (b) इंडिका
   (c) पुराण (d) राजतरंगणी
   53-55th BPSC (Pre)

5. किस अभिलेख में रूद्रदामन प्रथम की विभिन्न उपलब्धियाँ वर्णित हैं?
   (a) जूनागढ़ (b) भीतरी
   (c) नासिक (d) साँची
   53-55th BPSC (Pre)

6. कौटिल्य का अर्थशास्त्र कितने अधिकरणों में विभाजित हैं-
   (a) 11 (b) 12
   (c) 14 (d) 15
   48-52th BPSC (Pre)

7. अशोक के ब्राह्मी अभिलेखों को सर्वप्रथम किसने पढ़ा था?
   (a) प्रिंसेप (b) एच.डी. सांकलिया
   (c) एस.आर. गोयल (d) बी.एन. मिश्रा
   52nd BPSC (Pre)

8. 'हर्षचरितम्' नामक पुस्तक किसने लिखी?
   (a) कालिदास (b) बाणभट्ट
   (c) विष्णुगुप्त (d) परिमलगुप्त
   47th BPSC (Pre)

9. 'मुद्राराक्षस' नामक पुस्तक का लेखक कौन था?
   (a) विशाखदत्त (b) कौटिल्य
   (c) बाणभट्ट (d) कल्हण **47th BPSC (Pre)**

10. वह स्रोत जिसमें पाटलिपुत्र के प्रशासन का वर्णन उपलब्ध है, वह है-
    (a) दिव्यावदान (b) अर्थशास्त्र
    (c) इण्डिका (d) अशोक के शिलालेख
    46th BPSC (Pre)

11. अशोक के शिलालेखों में प्रयुक्त भाषा है-
(a) संस्कृत (b) प्राकृत
(c) पालि (d) हिंदी **46th BPSC (Pre)**

12. अर्थशास्त्र के अनुसार 'सीता' भूमि का अभिप्राय है-
(a) न जोती जाने वाली अनुपयोगी भूमि
(b) ब्राह्मणों के स्वामित्व वाली भूमि
(c) जनजातियों द्वारा जोती जाने वाली भूमि
(d) वनीय भूमि **46th BPSC (Pre)**

13. 'कुमारसम्भव' महाकाव्य किस कवि ने लिखा?
(a) बाणभट्ट (b) चंदबरदाई
(c) हरिसेन (d) कालिदास **45th BPSC (Pre)**

14. कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में किस पहलू पर प्रकाश डाला गया है?
(a) आर्थिक जीवन (b) राजनीतिक नीतियाँ
(c) धार्मिक जीवन (d) सामाजिक जीवन **45th BPSC (Pre)**

15. 'स्वप्नवासवदत्ता' के लेखक हैं-
(a) कालिदास (b) भास
(c) भवभूति (d) राजशेखर **43rd BPSC (Pre)**

16. पृथ्वीराज रासो के लेखक हैं-
(a) कल्हण (b) बिल्हण
(c) जयानक (d) चन्दबरदाई **43rd BPSC (Pre)**

17. ह्वेनसांग की भारत यात्रा के समय सूती कपड़ों के उत्पाद के लिये सबसे प्रसिद्ध नगर था-
(a) वाराणसी (b) मथुरा
(c) पाटलिपुत्र (d) काँची **41st BPSC (Pre)**

18. बोगाज कोई का महत्त्व इसलिये है कि-
(a) वहाँ जो अभिलेख प्राप्त हुआ है उनमें वैदिक देवी एवं देवताओं का वर्णन मिलता है।
(b) मध्य एशिया एवं तिब्बत के बीच एक महत्त्वपूर्ण व्यापारिक केंद्र के रूप में जाना जाता है।
(c) वेद के मूल ग्रंथ की रचना यहीं हुई थी।
(d) उपर्युक्त में से कोई नहीं। **39th BPSC (Pre)**

19. किस अभिलेख से यह साबित होता है कि चंद्रगुप्त का प्रभाव पश्चिम भारत तक फैला हुआ था-
(a) कलिंग अभिलेख
(b) अशोक का गिरनार अभिलेख
(c) रूद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख
(d) अशोक का सोपारा अभिलेख **39th BPSC (Pre)**

20. केवल वह स्तम्भ जिसमें अशोक ने स्वयं को मगध का सम्राट बताया हैं-
(a) मस्की का लघु स्तंभ (b) रुम्मिनदेई स्तंभ
(c) कौन स्तंभ (d) भाब्रु स्तंभ **39th BPSC (Pre)**

21. उस स्रोत का नाम बताइए जो प्राचीन भारत के व्यापारिक मार्गों पर मौन है?
(a) संगम साहित्य (b) मिलिन्दपन्हो
(c) जातक कहानियाँ (d) उपर्युक्त सभी **39th BPSC (Pre)**

22. निम्नलिखित अभिलेखों में से किसमें विधवादहन का उदाहरण उल्लिखित है?
(a) समुद्रगुप्त का एरण पाषाण अभिलेख
(b) बुधगुप्त का एरण स्तंभ अभिलेख
(c) भानुगुप्त का एरण स्तंभ अभिलेख
(d) तोरमाण का एरण वराह अभिलेख
(e) उपर्युक्त में से कोई नहीं/उपर्युक्त में से एक से अधिक **Bihar CDPO (Pre.), 2017**

23. ई. पू. दूसरी सदी में शूद्रक ने 'मृच्छकटिकम्' नामक प्रसिद्ध नाटक की रचना की, जो संस्कृत भाषा में था। मृच्छकटिकम् का अर्थ है-
(a) छोटी चिड़िया (b) मिट्टी की छोटी गाड़ी
(c) छोटी मछली (d) इनमें से कोई नहीं **BSSC-CGL (Pre.), 2014**

24. कल्हण द्वारा रचित 'राजतरंगिणी' है-
(a) गीतों का संग्रह (b) कश्मीर का इतिहास
(c) चंद्रगुप्त के शासन के बारे में (d) इनमें से कोई नहीं **BSSC-CGL (Pre.), 2011**

25. 'कथा सरित सागर' के लेखक कौन हैं?
(a) क्षेमेन्द्र (b) सोमदेव
(c) विशाखदत्त (d) धनपाल **Bihar SI (Mains), 2018**

26. निम्नलिखित में से कौन-सी कृति कौटिल्य की है?
(a) कादंबरी (b) अर्थशास्त्र
(c) रामायण (d) बृहत् कथा **Bihar ESI (Pre.), 2012**

27. प्राचीन भारत का सुप्रसिद्ध व्यक्ति पाणिनी था-
(a) एक खगोलशास्त्री (b) एक व्याकरणशास्त्री
(c) एक गणितज्ञ (d) एक दर्शनशास्त्री **Bihar ESI (Pre.), 2012**

28. सर्वप्रथम भारतवर्ष का उल्लेख किस अभिलेख में है?
(a) बोगजकोई अभिलेख (b) हाथीगुम्फा अभिलेख
(c) नासिक अभिलेख (d) ऐहोल अभिलेख
(e) उपर्युक्त में से कोई नहीं/उपर्युक्त में से एक से अधिक

29. 'नेचुरल हिस्ट्री' नामक पुस्तक के लेखक कौन हैं?
(a) टॉलमी (b) मेगास्थनीज
(c) प्लिनी (d) डाइमेकस

उत्तरमाला

1. (e)	2. (a)	3. (b)	4. (d)	5. (a)
6. (d)	7. (a)	8. (b)	9. (a)	10. (c)
11. (b)	12. (c)	13. (d)	14. (b)	15. (b)
16. (d)	17. (b)	18. (a)	19. (c)	20. (d)
21. (b)	22. (c)	23. (b)	24. (b)	25. (b)
26. (b)	27. (b)	28. (b)	29. (c)	

2 पाषाणयुगीन संस्कृति (Stone Age Culture)

पाषाण युग इतिहास का वह काल है जब मानव का जीवन पत्थरों (पाषाण) पर अत्यधिक आश्रित था। उदाहरण के लिये पत्थरों से शिकार करना, पत्थरों की गुफाओं में शरण लेना, पत्थरों से आग पैदा करना इत्यादि।

प्राचीन भारतीय इतिहास का विकास (Development of the Ancient Indian History)

भारतीय प्रागैतिहासिक काल के इतिहास को उद्घाटित करने का श्रेय **डॉ. प्राइमरोज** नामक एक अंग्रेज़ को जाता है। उन्होंने 1842 ई. में कर्नाटक के **रायचूर** ज़िले में लिंगसुगुर नामक स्थान पर प्रागैतिहासिक औज़ारों (पत्थर के औज़ार, तीर के फलक) की खोज की। प्राचीन भारत के इतिहास के विभिन्न कालों का वर्गीकरण एवं प्रमुख विशेषताएँ नीचे दिये गए चार्ट के माध्यम से प्रस्तुत की गई हैं–

1. **प्रागैतिहासिक काल:** वह काल जिसके लिये कोई लिखित साक्ष्य उपलब्ध नहीं है और जिसमें मनुष्य का जीवन अपेक्षाकृत सभ्य नहीं था। हड़प्पा सभ्यता से पूर्व का भारतीय इतिहास इसी श्रेणी में आता है।
2. **आद्य-ऐतिहासिक काल:** भारतीय इतिहास का वह काल जिसमें लिखित साक्ष्य तो उपलब्ध हैं लेकिन वे गूढ़ लिपि में हैं और जिनका अर्थ अभी नहीं निकाला जा सका है। हड़प्पा सभ्यता और वैदिक काल की गणना इसी काल के अंतर्गत होती है।
3. **ऐतिहासिक काल:** वह काल जिसके लिखित साक्ष्य उपलब्ध हैं और जिसमें मनुष्य सभ्य बन गया था। लगभग 600 ईसा पूर्व के बाद का काल '**ऐतिहासिक काल**' कहलाता है।

पुरापाषाण काल : आखेटक और खाद्य संग्राहक (Palaeolithic Age : Hunter and Food Collector)

पुरापाषाण संस्कृति का उदय अभिनूतन युग (Pleistocene) में हुआ था। इस युग में धरती बर्फ से ढकी हुई थी। भारतीय पुरापाषाण काल को मानव द्वारा इस्तेमाल किये जाने वाले पत्थरों के औज़ारों के स्वरूप और जलवायु में होने वाले परिवर्तन के आधार पर निम्नलिखित तीन अवस्थाओं में बाँटा जाता है–

1. निम्न पुरापाषाण काल (प्रारंभ से 1 लाख ईसा.पूर्व.)
2. मध्य पुरापाषाण काल (1 लाख ईसा.पूर्व. से 40 हज़ार ईसा.पूर्व.)
3. उच्च पुरापाषाण काल (40 हज़ार ईसा.पूर्व. से 10 हज़ार ईसा.पूर्व.)

पुरापाषाण काल के औज़ार (Tools of Palaeolithic age)

काल	मुख्य औज़ार
निम्न पुरापाषाण काल	हाथ की कुल्हाड़ी, तक्षणी, काटने का औज़ार
मध्य पुरापाषाण काल	काटने वाले औज़ार (फलक, वेधनी, खुरचनी)
उच्च पुरापाषाण काल	तक्षणी और खुरचनी

अपवादस्वरूप 40,000 ईसा.पूर्व. से 15,000 ईसा.पूर्व. के बीच दक्कन के पठार में मध्य पुरापाषाण काल तथा उच्च पुरापाषाण काल के औज़ार मिले हैं।

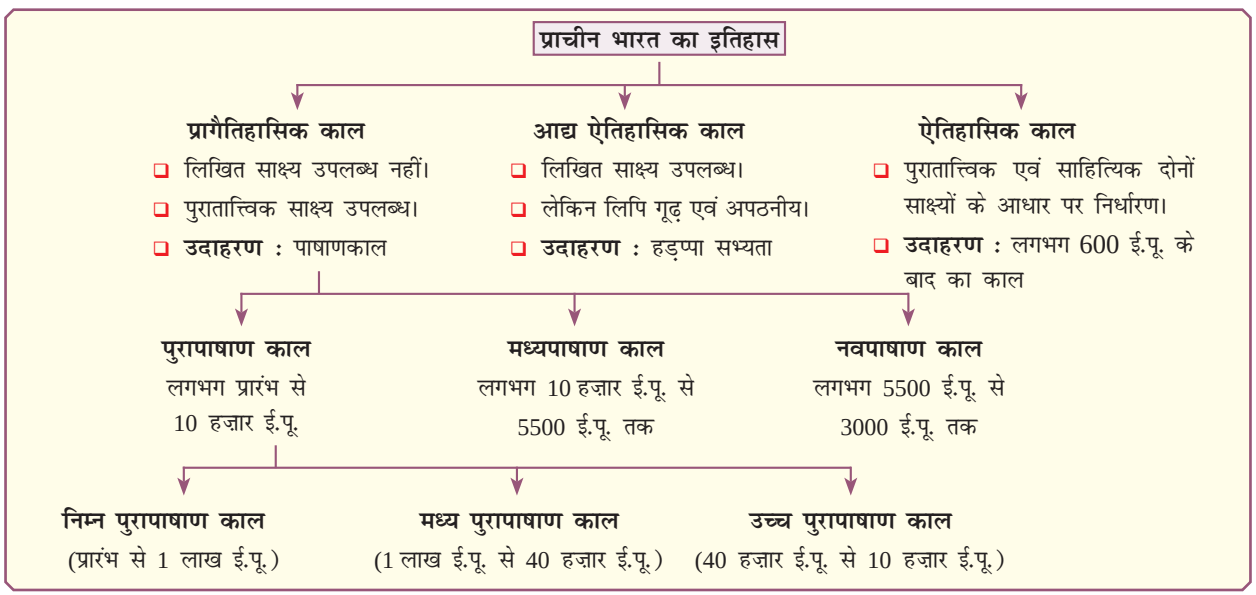

3 हड़प्पा सभ्यता
(Harappan Civilization)

हड़प्पा सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक मानी जाती है। यह भारतीय उपमहाद्वीप में प्रथम नगरीय क्रांति को दर्शाती है। इसका क्षेत्रीय विस्तार, नगर-नियोजन तथा सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता आदि इसे एक विशिष्ट सभ्यता के रूप में स्थापित करती है। यह **कांस्ययुगीन** सभ्यता थी। कार्बन डेटिंग पद्धति (C_{14}) के आधार पर इस सभ्यता का काल लगभग 2500 ईसा पूर्व–1750 ईसा पूर्व माना जाता है। नवीन शोध के अनुसार यह सभ्यता लगभग 8,000 साल पुरानी है।

उद्भव एवं विस्तार (Emergence and Expansion)

हड़प्पा सभ्यता के उद्भव एवं विस्तार को निम्नलिखित रूप से वर्गीकृत किया जाता है–

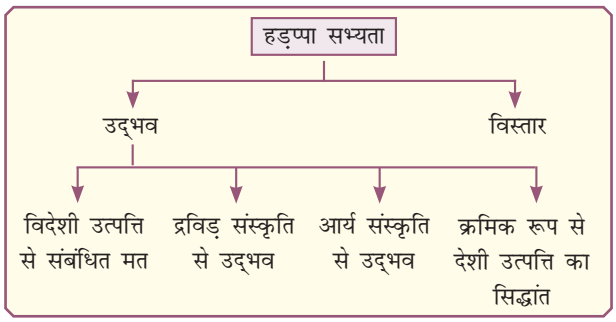

उद्भव *(Emergence)*

हड़प्पा सभ्यता का उद्भव ताम्रपाषाणिक पृष्ठभूमि पर भारतीय उपमहाद्वीप के पश्चिमोत्तर क्षेत्र में हुआ जो वर्तमान में भारत, पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान के कुछ क्षेत्रों में अवस्थित है। विस्तृत खोजों के बावजूद इस सभ्यता के उद्भव तथा विकास के संदर्भ में कोई ठोस जानकारी नहीं मिल पाई है। उद्भव की प्रक्रिया को जानने में कई सारी व्यावहारिक समस्याएँ हैं, जैसे- क्षैतिज उत्खनन का न होना, ऊर्ध्वाधर खनन भी जलस्तर के ऊपर तक होना, लिपि का अध्ययन नहीं हो पाना आदि।

इस प्रकार आवश्यक साक्ष्यों का अभाव, जैसे- साहित्यिक स्रोतों का अनुपलब्ध होना एवं पुरातात्त्विक स्रोतों द्वारा अपर्याप्त सूचना देना हड़प्पा सभ्यता के उद्भव की व्याख्या में एक बड़ी समस्या है। इस कारण से इस सभ्यता के उद्भव के संबंध में विभिन्न इतिहासकारों ने भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किये हैं।

विदेशी उत्पत्ति से संबंधित मत

इस मत के प्रतिपादक **मार्टिमर व्हीलर** और **गार्डन चाइल्ड** जैसे इतिहासकार हैं। इसके लिये इन्होंने **सांस्कृतिक विसरण** का सिद्धांत प्रयुक्त किया। अन्नागार, गढ़ी तथा बुर्ज में प्रयुक्त शहतीरों के आधार पर मेसोपोटामिया से संबंध जोड़ा जाता है। उसी प्रकार बलूचिस्तान से प्राप्त मिट्टी के ढेरों की तुलना मेसोपोटामिया से प्राप्त जिगुरत (मंदिर) से की गई है। इनका मानना है कि मेसोपोटामिया से नगरीय सभ्यता के गुण भारत पहुँचे, लेकिन पुरातात्त्विक साक्ष्य इसके विपरीत हैं। हड़प्पा नगर-योजना मेसोपोटामिया से कहीं अधिक विकसित थी। हड़प्पा में पकी हुई ईंटों का प्रचुर प्रयोग मिलता है। हड़प्पाई मुहर, लिपि, औज़ार, मृद्भांड आदि मेसोपोटामिया और मिस्र से भिन्न हैं। हड़प्पाई लिपि चित्रात्मक थी तो मेसोपोटामियाई लिपि कीलनुमा।

अत: हड़प्पा सभ्यता की मौलिकता के आधार पर कहा जा सकता है कि इसका उद्भव महज़ विदेशी प्रेरणा से नहीं हुआ, हालाँकि इस पर विदेशी प्रभाव को पूरी तरह से नकारा भी नहीं जा सकता है।

द्रविड़ संस्कृति से उद्भव

कुछ विद्वानों का मत है कि आर्यों के आगमन से पूर्व द्रविड़ लोग इस क्षेत्र में निवास करते थे। यहाँ से प्राप्त भूमध्यसागरीय प्रजाति के कंकालों को **द्रविड़ों** से जोड़ा गया है। साथ ही हड़प्पाई लिपि को भी द्रविड़ लिपि से जोड़ा गया है। इसके अलावा धार्मिक क्रियाकलाप, जैसे– लिंग पूजा, आराध्य देव की पूजा, मातृदेवी की पूजा, स्नान का महत्त्व आदि के आधार पर भी हड़प्पा संस्कृति पर द्रविड़ संस्कृति के प्रभाव को दर्शाने का प्रयास किया गया है। लेकिन आर्यों का आक्रमण अनैतिहासिक सिद्ध हो जाने के कारण केवल द्रविड़ संस्कृति से हड़प्पा के जुड़ाव का मत उचित प्रतीत नहीं होता है।

आर्य संस्कृति से उद्भव

इस सभ्यता की उत्पत्ति के संबंध में एक मत यह भी दिया जाता है कि आर्य लोग ही इस सभ्यता के जनक थे। इसके पक्ष में यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि दोनों सभ्यताओं का क्षेत्र सप्तसैंधव ही था। ऋग्वेद में इस क्षेत्र की तथा यहाँ की नदियों की चर्चा मिलती है। हाल ही में प्राप्त सिंधु मुहर पर घोड़े जैसी शक्ल को खोजने का दावा किया गया है। परंतु ठोस साक्ष्यों के अभाव में यह तर्क भी खंडित हो जाता है, क्योंकि आर्य लोग ग्रामीण तथा खानाबदोश जीवन जीते थे जबकि हड़प्पा सभ्यता नगरीकृत थी। वैदिक काल में इंद्र को पुरंदर अर्थात् किले का भंजक कहा गया है, जबकि इस तर्क के अनुसार इसे किले का निर्माता कहा जाना चाहिये था। वैदिक आर्य घोड़े तथा रथ का व्यापक प्रयोग करते थे। ऐसे में इस तर्क को भी मानना उचित नहीं लगता है।

क्रमिक रूप से देशी उत्पत्ति का सिद्धांत

क्रमिक उद्भव के सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य में सामान्यत: दो दृष्टिकोण प्रचलित हैं। एक दृष्टिकोण के अनुसार यह सोथी संस्कृति से क्रमिक

4 वैदिक काल (Vedic Age)

हड़प्पा सभ्यता के पतन के पश्चात् भारत में जो नवीन संस्कृति प्रकाश में आई, उसके विषय में हमें सम्पूर्ण जानकारी वेदों से मिलती है। इसीलिये इस काल का नामकरण **"वैदिक काल"** के नाम से हुआ है। वेदों में भी ऋग्वेद सर्वप्राचीन होने के साथ-साथ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। चूँकि इस संस्कृति के प्रवर्तक आर्य लोग थे, इसलिये इसे कभी-कभी **आर्य सभ्यता या आर्य संस्कृति** का नाम भी दिया जाता है। यहाँ आर्य से अभिप्राय है **श्रेष्ठ, अभिजात, कुलीन** आदि। वैदिक काल अपने-आप में भारतीय इतिहास के लगभग हज़ार वर्ष (1500 ईसा पूर्व - 600 ईसा पूर्व) को समेटे हुए है। वैदिक काल का विभाजन ऋग्वैदिक या पूर्व वैदिक काल (1500 ईसा पूर्व - 1000 ईसा पूर्व) तथा उत्तर वैदिक काल (1000 ईसा पूर्व - 600 ईसा पूर्व) के रूप में हुआ है।

ऋग्वैदिक काल (1500 ईसा पूर्व - 1000 ईसा पूर्व) [Rigvedic Age (1500 B.C. - 1000 B.C.)]

ऋग्वैदिक काल की शुरुआत भारत में आर्यों के आगमन से माना जाता है। लेकिन आने वाले आर्यों में नस्लीय विभिन्नता के बावजूद उनकी प्रारंभिक संस्कृति लगभग समान थी। इनके नस्ल, धर्म एवं संस्कृति के बारे में इतिहासकारों ने विभिन्न स्रोतों का सहारा लिया है।

जानकारी के स्रोत *(Sources of information)*

भारत में आर्यों के आरंभिक इतिहास के संबंध में जानकारी का प्रमुख स्रोत **वैदिक साहित्य** है। अन्य स्रोतों में प्रमुख स्थान पुरातत्त्व का है, जो मात्र साहित्यिक स्रोतों पर आधारित विश्लेषण की पुष्टि करने, परिष्कृत और रूपांतरित करने में सहायक हुए हैं।

साहित्यिक स्रोत (Literary sources)

वैदिक साहित्य : एक दृष्टि में

वैदिक साहित्य से तात्पर्य वेद, ब्राह्मण, ग्रंथ, अरण्यक और उपनिषदों से है। वैदिक साहित्य को श्रुति और अपौरूषेय तथा नित्य कहा जाता है जो ऋषियों द्वारा कई पीढ़ियों तक निरंतर मिलता रहा।

ऋग्वेद: यह सबसे प्राचीन वेद है। इसमें अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण आदि देवताओं की स्तुतियाँ संगृहीत हैं।

सामवेद: ऋग्वैदिक श्लोकों को गाने के लिये चुनकर धुनों में बाँटा गया और इसी के पुर्नव्यवस्थित संकलन का नाम 'सामवेद' पड़ा। इसमें दी गई ऋचाएँ उपासना एवं धार्मिक अनुष्ठानों के अवसर पर स्पष्ट तथा लयबद्ध रूप से गायी जाती थीं।

यजुर्वेद: इसमें ऋचाओं के साथ-साथ गाते समय किये जाने वाले अनुष्ठानों का भी पद्य एवं गद्य दोनों में वर्णन है। यह वेद यज्ञ-संबंधी अनुष्ठानों पर प्रकाश डालता है।

अथर्ववेद: यह वेद जनसामान्य की सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों को जानने के लिये इस काल का सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमें लोक परंपराओं, धार्मिक विचार, विपत्तियों और व्याधियों के निवारण संबंधी तंत्र-मंत्र संगृहीत एवं विभिन्न प्रकार के औषधियों से संबंधित।

वेदत्रयी: ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद को कहते हैं।

संहिता: चारों वेदों का सम्मिलित रूप।

उपनिषद्: 108 (प्रामाणिक 13) इसका मुख्य विषय-दर्शन है।) उपनिषद में ही 'मोक्ष' की चर्चा की गई है।

वैदिकोत्तर साहित्य

वैदिकोत्तर साहित्य में मुख्य रूप से वेदांग और उपवेद आते हैं। वेदों को सही ढंग से समझने के लिये वेदांगों की रचना हुई। इनकी संख्या छ: है-

- शिक्षा को वेदरूपी नासिका कहा गया। शुद्ध उच्चारण के लिये शिक्षा शास्त्र की रचना।
- कल्प को वेदरूपी हाथ कहा गया। कर्मकांडों के विनियमन के लिये कल्पसूत्र की रचना हुई। इसके तीन भाग है- 'श्रोत सूत्र', 'गृह्य सूत्र' और 'धर्मसूत्र।' श्रोत सूत्र के ही एक भाग शुल्व सूत्र से रेखागणित का प्रारंभ माना जाता है।
- व्याकरण को वेदरूपी मुख माना गया है। व्याकरण का प्राचीनतम ग्रंथ पाणिनी की अष्टाध्यायी है।
- निरुक्त को वेदरूपी श्रौत (कान) कहा गया है। इसमें वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति बतायी गयी है।
- छन्द को वेदरूपी पैर कहा गया है। पिंगल मुनि द्वारा रचित 'छन्दशास्त्र' प्राचीनतम ग्रंथ है। इससे शब्दों की उत्पत्ति हुई।
- ज्योतिष को वेदरूपी नेत्र कहा गया है। लगधमुनि द्वारा रचित 'वेदांग ज्योतिष' ज्योतिष की प्राचीनतम रचना है जो भारतीय ज्योतिषशास्त्र का मूलाधार है।

ऋग्वैदिक काल की जानकारी का एकमात्र साहित्यिक स्रोत ऋग्वेद है। इसकी रचना अनुमानत: 1500 ईसा पूर्व से 1000 ईसा पूर्व के मध्य मानी जाती है। इसमें 10 मंडल तथा 1028 सूक्त एवं 10580 ऋचाएँ हैं। इसके कुल 10 मंडलों में से 2 से 7 तक प्राचीनतम अंश हैं। प्रथम और दशम मंडल सबसे बाद में जोड़े गए मालूम होते हैं। इस वेद में 'आर्य' शब्द का उल्लेख 36 बार है। ऋग्वेद की अनेक बातें **अवेस्ता** से मिलती हैं। **अवेस्ता** ईरानी भाषा का प्राचीनतम ग्रंथ है। दोनों ग्रंथों में बहुत से देवताओं और सामाजिक वर्गों के नाम भी मिलते-जुलते हैं।

मंडल	रचयिता ऋषि
प्रथम मंडल	ऋषिगण
द्वितीय मंडल	गृहत्समद

5 छठी शताब्दी ईसा पूर्व का काल (महाजनपद काल)
[Era of the Sixth Century B.C. (Mahajanpada Age)]

छठी शताब्दी ईसा पूर्व का काल भारतीय इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। भारत में इस शताब्दी में सभी क्षेत्रों में अपूर्व क्रांतियाँ हुईं और सर्वत्र एक नई चेतना का उदय हुआ। इसी शताब्दी में भारत में राज्यों के निर्माण की प्रक्रिया शुरू हुई और मगध में साम्राज्यवाद की नींव पड़ी। इस काल से पूर्व का काल राजनैतिक अंतर्विरोधों का काल था। नवीन धर्मों यथा बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म का उदय इसी काल में हुआ। आर्थिक दृष्टि से भी यह क्रांति का युग था, फलतः द्वितीय नगरीकरण की प्रक्रिया भी इसी काल में सामने आई। लोक भाषाओं का उद्भव तथा सामाजिक-धार्मिक स्थिति में नियमन हेतु **'सूत्र-साहित्य'** की रचना भी इसी काल में हुई। इस बहुमुखी विकास के कारण ही इस काल का भारत के इतिहास में विशिष्ट स्थान है।

धार्मिक आंदोलनः जैन धर्म व बौद्ध धर्म (Religious Movement: Jainism and Buddhism)

ईसा पूर्व छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मध्य गंगा के मैदान में अनेक धार्मिक संप्रदायों का उदय हुआ। लगभग सभी धार्मिक संप्रदायों का विरोध धार्मिक व्यवस्था के विरुद्ध था। एक दृष्टि से अगर देखा जाए तो छठी शताब्दी ईसा पूर्व के ऐसे धर्म सुधार आंदोलन की पृष्ठभूमि उत्तर वैदिक काल के अंत तक तैयार हो चुकी थी। तत्कालीन सामाजिक विद्वेष के वातावरण, आर्थिक क्षेत्र में हुए परिवर्तन, धार्मिक आडंबर आदि ने सुधार आंदोलन की भूमिका तैयार की। इस युग के लगभग 62 संप्रदाय (बौद्ध ग्रंथों के अनुसार) ज्ञात हैं, जिनमें बौद्ध धर्म (गौतम), जैन धर्म (महावीर), नियतिवाद (मक्खलि गोशाल) आदि प्रमुख हैं।

संप्रदाय	संस्थापक
आजीवक	मक्खलिपुत्र गोशाल
घोर अक्रियावादी	पूरण कश्यप
यदृच्छावाद	आचार्य अजित केशकांबलिन
भौतिकवादी	पकुध कच्चायन
अनिश्चयवादी	संजय वेट्ठलिपुत्र

उद्भव के कारण *(Cause of emergence)*

वैदिकोत्तर काल में समाज स्पष्टतः चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) में विभाजित था तथा उनके कर्त्तव्य भी अलग-अलग निर्धारित थे। इस बात पर ज़ोर दिया जाता था कि वर्ण जन्म-मूलक है। वर्ण व्यवस्था में जो जितने ऊँचे वर्ण का होता था, वह उतना ही शुद्ध अधिकार प्राप्त सुविधाकारी समझा जाता था।

यह स्वाभाविक ही था कि इस तरह के वर्ण-विभाजन वाले समाज में तनाव पैदा हो। वैश्यों और शूद्रों में इसकी कैसी प्रतिक्रिया थी, यह जानने का कोई साधन नहीं है। परंतु क्षत्रिय लोग, जो शासक के रूप में काम करते थे, ब्राह्मणों के धर्म विषयक प्रभुत्व पर प्रबल आपत्ति करते थे। ब्राह्मणों के विशेषाधिकारों के विरुद्ध क्षत्रियों का खड़ा होना नए धर्मों के उद्भव का एक प्रमुख कारण बना। जैन धर्म के प्रमुख वर्धमान महावीर और बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध दोनों क्षत्रिय वंश के थे और दोनों ने ब्राह्मणों की मान्यता को चुनौती दी।

600 ईसा पूर्व के आस-पास मध्य गंगा के मैदानों में लोहे का प्रयोग होने लगा और लोग भारी संख्या में बसने लगे। लोहे के औज़ारों का प्रयोग करके जंगलों की सफाई, खेती आदि संभव हुई। लोहे के फाल वाले हलों पर आधारित कृषि-मूलक अर्थव्यवस्था में बैल का उपयोग ज़रूरी था; जबकि दूसरी तरफ वैदिक कर्मकांड के अनुसार यज्ञों में अंधाधुंध पशु मारे जाने लगे थे। इससे खेती में बाधा पहुँचती थी, अतः पशुवध को रोकना आवश्यक हो गया था।

वैश्य भी समाज में अपने महत्त्व को बढ़ाना चाहते थे। ऐसे में स्वाभाविक है कि वे किसी ऐसे धर्म की खोज में थे जहाँ उनकी सामाजिक स्थिति सुधरे। क्षत्रियों के अतिरिक्त वैश्यों ने महावीर और गौतम बुद्ध दोनों की उदारतापूर्वक सहायता की। इस प्रकार इन सारे कारकों ने मिलकर जैन धर्म और बौद्ध धर्म के उद्भव में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

जैन धर्म *(Jainism)*

जैन धर्मावलम्बियों का विश्वास है कि उनके सबसे महान धर्म उपदेशक महावीर के पहले तेइस और आचार्य हुए हैं जो तीर्थंकर कहलाते थे। परंतु इनमें से बाईस तीर्थंकरों की ऐतिहासिकता संदिग्ध है। अंतिम दो तीर्थंकर पार्श्वनाथ (23वें) एवं महावीर स्वामी (24वें) की ऐतिहासिकता को जैन धर्म के ग्रंथों में प्रमाणित किया गया है। जैन धर्म के मूल संस्थापक या प्रवर्तक **प्रथम** तीर्थंकर **ऋषभदेव** माने जाते हैं।

महावीर (Mahaveer)

महावीर स्वामी का जन्म लगभग 540 ईसा पूर्व (कहीं-कहीं 599 ईसा पूर्व) में वज्जि संघ की राजधानी वैशाली (वर्तमान में बिहार का एक ज़िला) के निकट कुण्डग्राम में ज्ञातृक क्षत्रिय कुल में हुआ था। उनके पिता सिद्धार्थ ज्ञातृक क्षत्रियों के संघ के प्रधान थे। उनकी माता का नाम त्रिशला था जो बिम्बिसार के ससुर लिच्छवि-नरेश चेटक या चेतक की बहन थीं। इस प्रकार महावीर के परिवार का संबंध मगध के राजपरिवार से भी था।

6 मौर्य साम्राज्य (Maurya Empire)

मौर्य साम्राज्य की स्थापना भारतीय उपमहाद्वीप में साम्राज्य निर्माण की दिशा में पहला बड़ा प्रयोग था। **गंगाघाटी** को केंद्र बनाकर मौर्य साम्राज्य भारतीय उपमहाद्वीप के अधिकांश क्षेत्र में फैल गया। वस्तुतः माना जाता है कि इस साम्राज्य ने ही जंबूद्वीप की अवधारणा को मूर्त रूप दिया। मौर्य साम्राज्य का आधार चंद्रगुप्त मौर्य ने तैयार किया। विशाखदत्त की कृति मुद्राराक्षस से यह सूचना मिलती है कि अपने गुरु चाणक्य की सहायता से चंद्रगुप्त मौर्य ने सिकंदर की अनुपस्थिति से उत्पन्न अव्यवस्था का लाभ उठाते हुए उत्तर-पश्चिम में सिंधु नदी तथा व्यास नदी के बीच के भू-भाग पर कब्ज़ा कर लिया। **खरोष्ठी** लिपि में अंकित **शाहबाजगढ़ी** और **मानसेहरा** के अभिलेखों से इस तथ्य की पुष्टि होती है। भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न मिले क्षेत्रों से अशोक के अभिलेखों के आधार पर यह अनुमान व्यक्त किया जाता है कि मौर्यों के अंतर्गत एक वृहद् साम्राज्य की स्थापना हुई, जो उत्तर-पश्चिम में हिंदुकुश से लेकर पूरब में बंगाल तथा दक्षिण में ब्रह्मगिरी तक विस्तृत था।

स्रोत (Sources)

मौर्य साम्राज्य की जानकारी के लिये हमारे पास साहित्यिक और पुरातात्त्विक दोनों प्रकार के स्रोत उपलब्ध हैं।

साहित्यिक स्रोत *(Literary Sources)*

- **अर्थशास्त्रः** कौटिल्य द्वारा रचित यह पुस्तक मौर्यकालीन राजनीति और शासन के बारे में सूचना देती है। कौटिल्य (चाणक्य), चंद्रगुप्त मौर्य (मौर्य वंश का संस्थापक) का **प्रधानमंत्री** था।
- **मुद्राराक्षसः** चंद्रगुप्त मौर्य के शत्रुओं के विरुद्ध चाणक्य ने जो चालें चलीं, उनकी विस्तृत कथा **मुद्राराक्षस** नामक नाटक में है, जिसकी रचना **विशाखदत्त** ने की है। साथ ही यह पुस्तक चंद्रगुप्त के समय की सामाजिक-आर्थिक दशा पर भी प्रकाश डालती है।
- **इंडिकाः** मेगास्थनीज़ की इंडिका से हमें मौर्यों के विस्तृत प्रशासन तंत्र की सूचना मिलती है। इस पुस्तक से मौर्य काल के प्रशासन, समाज और अर्थव्यवस्था की जानकारी मिलती है।
- **बौद्ध साहित्यः** दीपवंश अशोक के बौद्ध धर्म को श्रीलंका तक फैलाने की भूमिका के बारे में बताते हैं। अन्य बौद्ध साहित्य (महावंश, दिव्यावदान) तथा जैन साहित्य (कल्पसूत्र, परिशिष्टपर्वन) से भी मौर्य साम्राज्य के विस्तार पर प्रकाश पड़ता है।
- पुराण मौर्य राजाओं और घटनाओं के बारे में बताते हैं।

पुरातात्त्विक स्रोत *(Archaeological Sources)*

पुरातात्त्विक स्रोतों में अभिलेखों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनमें अशोक के अभिलेख, इससे पूर्व चंद्रगुप्त मौर्य के अभिलेख, रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख महत्त्वपूर्ण हैं जिसमें मौर्यकालीन राजनीतिक, प्रशासनिक, धार्मिक, सामाजिक आदि दशाओं का वर्णन मिलता है।

अशोक पूर्व के अभिलेखों में सोहगौरा तथा महास्थान का अभिलेख है, जो चंद्रगुप्त मौर्य के काल से संबंधित हैं। इससे पता चलता है कि मौर्य काल में दुर्भिक्ष पड़ता था। अशोक के अभिलेखों से जहाँ एक ओर साम्राज्य की सीमा के निर्धारण में सहायता मिलती है, वहीं इनसे अशोक के प्रशासन एवं उसके धार्मिक विश्वास तथा उसके व्यक्तिगत जीवन के साथ ही उसकी आंतरिक एवं विदेश नीति जैसे अनेक महत्त्वपूर्ण बातों की भी सूचना मिलती है।

अशोक के परवर्ती अभिलेखों में **रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख** से मौर्यकालीन सिंचाई व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। पहली बार इसी अभिलेख में चंद्रगुप्त के लिये **मौर्य** शब्द का प्रयोग हुआ है।

मौर्यकालीन स्थलों की खुदाइयों से अनेक ऐसी वस्तुएँ मिली हैं, जो इस काल की झाँकी प्रस्तुत करती हैं। **कुम्हरार (आधुनिक पटना)** से प्राप्त भवनों में लकड़ी एवं पकी ईंटों के प्रयोग का पता चलता है। **दीदारगंज (पटना)** एवं **बेसनगर** से प्राप्त मूर्तियाँ मौर्यकाल की लोक-कला की सूचना देती हैं।

चंद्रगुप्त मौर्य, बिंदुसार, अशोक (Chandragupta Maurya, Bindusara, Ashoka)

चंद्रगुप्त मौर्य *(Chandragupta Maurya)*

मौर्य राजवंश की स्थापना **चंद्रगुप्त मौर्य** ने की। ब्राह्मण ग्रंथों के अनुसार चंद्रगुप्त निम्न कुल का था, जबकि बौद्ध ग्रंथों के अनुसार उसका संबंध नेपाल की तराई से लगे गोरखपुर में मौर्य नामक क्षत्रिय कुल से था। चंद्रगुप्त ने नंद वंश के अंतिम राजा धनानंद को अपदस्थ कर राजधानी पाटलिपुत्र पर अधिकार कर लिया और 322 ईसा पूर्व में मगध के राजसिंहासन पर बैठा। रुद्रदामन के गिरनार अभिलेख से ज्ञात होता है कि चंद्रगुप्त ने पश्चिम भारत में सौराष्ट्र तक का प्रदेश जीतकर अपने प्रत्यक्ष शासन के अधीन कर लिया। इस प्रदेश में **पुष्यगुप्त, चंद्रगुप्त मौर्य का राज्यपाल** था और उसने यहीं पर सुदर्शन झील का निर्माण करवाया था। यूनानी स्रोतों के अनुसार चंद्रगुप्त एवं सिकंदर के मध्य एक बार मुलाकात हुई थी। बाद में 305.04 ई. पू. में चंद्रगुप्त ने सेल्यूकस को युद्ध में हराकर पश्चिमोत्तर भारत को अपने अधिकार क्षेत्र में ले लिया था, परंतु अंत में दोनों में समझौता हो गया और चंद्रगुप्त से 500 हाथी लेकर उसके बदले में सेल्यूकस ने उसे पूर्वी अफगानिस्तान, बलूचिस्तान और सिंधु के पश्चिम के क्षेत्रों को दे दिया। जिसमें एरिया (हेरात), आरकोसिया (कांधार) जेड्रोशिया (मकरान तट), पेरोपनिसदाई (काबुल) आदि राज्य आते थे। अशोक के अभिलेख तथा जैन एवं तमिल स्रोतों से ज्ञात होता है कि उत्तरी कर्नाटक तक का क्षेत्र चंद्रगुप्त ने विजित किया था। इस

7 मौर्योत्तर काल (Post-Mauryan Age)

मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् भारत की राजनीतिक एकता नष्ट हो गई। मौर्य वंश के पतन और गुप्त वंश के उत्थान के बीच जो पाँच शताब्दियाँ बीती, उनमें बहुत राजनीतिक उथल-पुथल हुई। इस काल की राजनीतिक व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण है- बहुराज्यीय व्यवस्था। इस व्यवस्था के अंतर्गत उत्तर भारत से दक्षिण भारत तक एक विशाल मौर्य साम्राज्य की जगह अनेक छोटे-छोटे राज्य दिखाई देते हैं। राजनैतिक एकता के अभाव में एकतरफ उत्तर से लेकर दक्षिण तक अनेक देशी राजवंशों को प्रभुत्व स्थापित हुआ तो दूसरी तरफ पश्चिमोत्तर भारत से पुनः विदेशी आक्रमणकारियों का आगमन हुआ जिसमें कुछ प्रमुख शक्तियों ने यहाँ पर राज्य की स्थापना की।

मौर्योत्तर काल

देशी राजवंश	प्रमुख विदेशी राजवंश
❑ शुंग वंश	❑ इण्डो-ग्रीक (हिंद-पवन)
❑ कण्व वंश	❑ शक
❑ आंध्र-सातवाहन वंश	❑ पार्थियन
❑ चेदि वंश/महामेधवाहन वंश	❑ कुषाण

देशी राजवंश (Desi Dynasty)

शुंग वंश *(Shunga dynasty)*

- मौर्यों का उत्तराधिकारी वंश शुंग वंश हुआ। इस वंश का संस्थापक **पुष्यमित्र शुंग** था। उसने अंतिम मौर्य शासक बृहद्रथ की हत्या कर मगध पर **शुंग वंश** की नींव डाली। उसे ब्राह्मणवंशीय माना जाता है।
- बौद्ध ग्रंथों में उसे बौद्ध विरोधी सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। एक विवरण के अनुसार अशोक के द्वारा जिन 84 हज़ार स्तूपों का निर्माण कराया गया पुष्यमित्र शुंग ने उन्हें नष्ट कर दिया। किंतु यह महज़ साहित्यिक विवरण है, इस संबंध में पुरातात्त्विक विवरण कुछ और कहते हैं। जैसे- पुष्यमित्र शुंग ने भरहुत स्तूप का निर्माण करवाया तथा साँची स्तूप में वेदिका स्थापित करवाई।
- ऐसा माना जाता है कि पुष्यमित्र शुंग के काल में यवनों का निरंतर आक्रमण हो रहा था। उसने यवनों के विरुद्ध सफलता भी प्राप्त की थी तथा अपनी विजय के उपलक्ष्य में अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न कराया था। इसका उल्लेख अयोध्या के राज्यपाल धनदेव के अभिलेख में मिलता है।
- यवन आक्रमण की चर्चा कालिदास कृत **'मालविकाग्निमित्रम्'**, पतंजलि के **'महाभाष्य और गार्गी संहिता'** आदि में मिलती है।
- महाभाष्य में पवनों द्वारा साकेत ओर माध्यमिका नगरी (चित्तौड़) पर आक्रमण का उल्लेख है।
- गार्गी संहिता में पवनों द्वारा पांचाल, मथुरा और साकेत पर विजय करते हुए पाटलिपुत्र तक पहुँचने का उल्लेख किया गया।

लगभग 185 से 75 ईसा पूर्व के बीच शुंग वंश का शासन रहा था। शुंगों की राजधानी **विदिशा** तथा **पाटलिपुत्र** रही थी। पुराणों के अनुसार पुष्यमित्र शुंग के लगभग दस उत्तराधिकारियों ने शासन किया था। उसका निकटस्थ उत्तराधिकारी अग्निमित्र था जिसके सम्मान में कालिदास ने **मालविकाग्निमित्रम्** की रचना की। उसी का एक उत्तराधिकारी **भागभद्र** हुआ जिसके दरबार **(विदिशा)** में यूनानी शासक **एण्टियालकीट्स** ने **हेलियोडोरस** को भेजा था। **हेलियोडोरस** ने ही **वसुदेव कृष्ण** के सम्मान में **विदिशा (बेसनगर)** में **गरुड़ ध्वज** की स्थापना की। इस वंश का अंतिम शासक **देवभूति** था। इसकी हत्या 75 ईसा पूर्व में **वसुदेव** ने कर दी और मगध की गद्दी पर **कण्व वंश** की स्थापना की।

कण्व वंश *(Kanva dynasty)*

अंतिम शुंग शासक देवभूति की हत्या उसके अमात्य वसुदेव ने कर दी। इसकी जानकारी हर्षचरित से प्राप्त होती है। वसुदेव ने जिस नवीन वंश की स्थापना की उसे कण्व वंश के नाम से जाना जाता है। यह भी ब्राह्मण वंश था। कण्व वंश के अंतर्गत चार शासक हुए जैसे: वसुदेव, भूमिमित्र, नारायण और सुशर्मन। लगभग 75 ई.पू. से 30 ईसा पूर्व तक कण्व वंश का शासन रहा। अंतिम शासक **सुशर्मन** की हत्या 30 ईसा पूर्व में **सिमुक** ने कर दी और एक नवीन ब्राह्मण वंश **सातवाहन वंश** की नींव डाली।

चेदि वंश *(Chedi dynasty)*

कलिंग के चेदि वंश से संबंधित जानकारी का प्रमुख स्रोत **खारवेल** का हाथीगुम्फा अभिलेख है जो भुवनेश्वर के निकट उदयगिरी की पहाड़ियों से प्राप्त हुआ है। इस अभिलेख से पता चलता है कि चेदि वंश का संस्थापक **महामेघवाहन** नामक व्यक्ति था, यद्यपि यह पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हुआ है। इसमें हमें खारवेल की विजयों का उल्लेख मिलता है, साथ ही इसी स्रोत से पता चलता है कि खारवेल इस वंश का महानतम शासक था। 24 वर्ष की आयु में 24 ईसा पूर्व में वह सिंहासन पर बैठा। अपने शासन के पाँचवे वर्ष उसने तनसुलि से एक नहर के जल को अपनी राजधानी लाने में सफलता अर्जित की। उसने मगध के एक शासक को भी हराने का दावा किया है, किन्तु उस शासक की पहचान स्पष्ट नहीं है। खारवेल **जैन धर्म** को मानने वाला था। हाथीगुम्फा अभिलेख से प्राप्त महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ निम्नलिखित हैं-

8 संगम काल (Sangam Age)

ऐतिहासिक काल के आरंभ में तमिलों के संबंध में जो कुछ जानकारी प्राप्त होती है, उसका स्रोत संगम साहित्य है। 'संगम' से तात्पर्य है **'कवियों का सम्मेलन'** जो संभवत: किसी सामंत या राजा के आश्रय में आयोजित होता था। ऐसे सम्मेलन में रचित साहित्य **संगम साहित्य** के नाम से जाना जाता है। ज्ञात स्रोतों के अनुसार **पांड्य शासकों** के अधीन तमिल क्षेत्र में **तीन संगमों** का आयोजन किया गया।

संगम	अध्यक्ष	संरक्षक	स्थल
प्रथम	अगस्त्य ऋषि	पांड्य शासक	मदुरै
द्वितीय	तोलकाप्पियर (संस्थापक अध्यक्ष अगस्त्य ऋषि)	पांड्य शासक	कपाट्पुरम
तृतीय	नक्कीरर	पांड्य शासक	उत्तरी मदुरै

प्रथम संगम, **मदुरै** नामक स्थान पर आयोजित हुआ जिसकी अध्यक्षता **अगस्त्य ऋषि** ने की थी। अगस्त्य ऋषि को ही **दक्षिण भारत** में **आर्य संस्कृति के प्रसार** का श्रेय दिया जाता है। इस संगम के सदस्यों की संख्या 549 थी। इन्हें 89 पांड्य शासकों का संरक्षण मिला। प्रथम संगम की कोई रचना उपलब्ध नहीं है। यह संगम सबसे अधिक दिनों तक चला। द्वितीय संगम का आयोजन **कपाट्पुरम** नामक स्थान पर हुआ था जिसके अध्यक्ष प्रारंभ में **अगस्त्य ऋषि** थे, परन्तु बाद में उनका स्थान उनके शिष्य **तोलकाप्पियर** ने ले लिया। इस संगम में कुल 49 सदस्य थे। इसे 59 पांड्य शासकों का संरक्षण मिला। इसमें भी अनेक ग्रंथों की रचना हुई किन्तु तोलकाप्पियर द्वारा रचित तोलकाप्पियम को छोड़कर शेष सारी रचनाएँ नष्ट हो गईं। उसी प्रकार तृतीय संगम का आयोजन **उत्तरी मदुरै** में हुआ। इसकी **अध्यक्षता नक्कीरर** ने की थी। इसमें 49 सदस्य थे। इन्हें 49 पांड्य राजाओं का संरक्षण मिला तथा कुल 449 कवियों को उनकी रचनाओं के प्रकाशन की अनुमति मिली। ईसा की आठवीं सदी में लिखी गई संगम की तमिल टीकाओं में कहा गया है कि तीनों संगम 9,990 वर्षों तक चलते रहे। उनमें 8,598 कवियों ने भाग लिया और 197 पांड्य राजा उनके संपोषक हुए। प्रथम संगम 4,400 वर्षों तक, द्वितीय संगम 3,700 वर्षों तक, एवं तृतीय संगम लभग 1,850 वर्षों तक चला। इन्हें अतिरंजना मात्र माना गया है, सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि मदुरै में संगम राजाश्रय में आयोजित होते थे। इन सम्मेलनों द्वारा रचित संगम साहित्य जो उपलब्ध है, लगभग 300 ई. और 600 ई. के बीच संकलित किया गया।

संगम साहित्य (Sangam Literature)

अन्वेषण करने पर ज्ञात होता है कि संगम साहित्य का विकास लगभग एक सहस्राब्दी के लम्बे काल में हुआ तथा यह क्रमिक रूप में विकसित होता रहा।

पुस्तक एवं लेखक	
पुस्तक	**लेखक**
❑ शिल्पादिकारम्	❑ इलांगोआदिगल
❑ मणिमेखलै	❑ सीतलैसत्तनार
❑ जीवकचिंतामणि	❑ तिरुतक्कदेवर
❑ तिरुमुरुकात्रुप्पदै	❑ नक्कीरर

संगम साहित्य को मोटे तौर पर दो समूहों में बाँटा जा सकता है- **आख्यानात्मक** और **उपदेशात्मक**। आख्यानात्मक ग्रंथ **'मेलकणक्कु'** अठारह मुख्य ग्रंथ कहलाते हैं। इसके अंतर्गत आठ पद्य संकलन और दस ग्राम्य गीत शामिल हैं। यह साहित्य दक्षिण भारत के परिवेश में ही विकसित हुआ किन्तु इस पर उत्तर भारत का भी प्रभाव माना जा सकता है। यद्यपि उत्तर का सीमित प्रभाव है। उदाहरण के लिये वर्ण-व्यवस्था की चर्चा एवं आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख आदि पर उत्तर भारत का प्रभाव रेखांकित किया जा सकता है।

उपदेशात्मक ग्रंथ **'पदिनेन कीलकणक्कु'** अठारह लघु ग्रंथ कहलाते हैं। इन ग्रंथों में **तिरुक्कुरल** तथा **नलदियार** प्रमुख हैं। इन ग्रंथों में **तिरुवल्लुवर** द्वारा रचित **'तिरुक्कुरल'** अथवा **'कुरल'** सबसे उत्कृष्ट रचना है। **कुरल को तमिल साहित्य का आधार स्तम्भ** तथा लघुवेद भी कहा जाता है। इस रचना में राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, आचार शास्त्र दर्शनशास्त्र और प्रेम जैसे विषय सम्मिलित हैं। संभवत: तिरुवल्लुवर चाणक्य, कात्यायन तथा मनु के विचारों से प्रभावित थे।

शिल्पादिकारम् - इसे तमिल साहित्य का उज्ज्वलतम रत्न माना जाता है। एक मान्यता के अनुसार इसकी रचना चेर शासक शेनगुट्टवन के भाई **इलांगोआदिगल** ने की। यह एक प्रेमकथा है जिसमें कोलवन नामक एक अमीर अपनी धर्मपत्नी कन्नगी की उपेक्षा करके कावेरीपट्टनम की माधवी नामक वेश्या से प्रेम करता है।

मणिमेखलै - इस महाकाव्य की रचना मदुरै के एक बौद्ध व्यापारी **सीतलैसत्तनार** ने की। ऐसा माना जाता है कि जहाँ शिल्पादिकारम् की कथा समाप्त होती है, वहीं से मणिमेखलै की कथा शुरू होती है। इस महाकाव्य की नायिका मणिमेखलै है जो कोलवन और माधवी से उत्पन्न पुत्री है। इसमें मणिमेखलै के साहसिक जीवन का वर्णन है। उतार-चढ़ाव भरे जीवन के बाद एक समय ऐसा भी आता है जब मणिमेखलै बौद्ध भिक्षुणी बन जाती है। इसका सम्बंध वणिक कथा से है।

इन ग्रंथों के अलावा संगम काल में **महाकाव्यों** की भी रचना हुई थी। हालाँकि इन महाकाव्यों की गणना संगम साहित्य में नहीं होती, फिर भी ये महाकाव्य उस समय के समाज के विषय में जानकारी का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। इस युग के कुछ प्रसिद्ध महाकाव्य हैं- **शिल्पादिकारम्**,

9 गुप्त साम्राज्य (Gupta Empire)

तीसरी सदी में उत्तर भारत में कुषाणों तथा दक्कन में सातवाहनों के प्रभुत्व के अवसान के साथ देश में राजनीतिक विघटन का दौर आरंभ हुआ। ज्ञात होता है कि कुषाणों के पतन के पश्चात् उत्तर भारत में सत्ता कुछ समय के लिये मुरुण्डों के हाथों में आई। फिर मुरुण्डों से गुप्तों ने सत्ता ग्रहण की। संभवत: गुप्त लोग कुषाणों के अधीनस्थ शासक अथवा सामंत रहे थे। उनकी सफलता का महत्त्वपूर्ण कारण वह सैन्य तकनीक थी जो उन्होंने कुषाणों से ग्रहण की। बिहार और उत्तर प्रदेश में अनेकों जगह कुषाण पुरावशेषों के मिलने के ठीक बाद गुप्त पुरावशेष मिले हैं।

गुप्त वंश के इतिहास की जानकारी के लिये साहित्यिक स्रोत के रूप में पुराण, स्मृतियाँ, बौद्ध ग्रंथ, विशाखदत्त कृत देवीचंद्रगुप्तम् एवं कालिदास की रचनाएँ प्रमुख हैं। विष्णु पुराण से गुप्त वंश के प्रारंभिक इतिहास की जानकारी मिलती है। **विशाखदत्त** की रचना **देवीचंद्रगुप्तम्** से गुप्त शासक रामगुप्त एवं चंद्रगुप्त द्वितीय के बारे में जानकारी मिलती है। विदेशी यात्रियों में चीनी यात्री फाह्यान का नाम प्रमुख है जो चंद्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में भारत आया था।

पुरातात्त्विक स्रोतों के रूप में समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति, चंद्रगुप्त द्वितीय के उदयगिरि गुहालेख (जिससे उसके साम्राज्य विजय का ज्ञान होता है), स्कंदगुप्त के भीतरी स्तंभलेख (जिससे हूण आक्रमण की जानकारी मिलती है) आदि प्रमुख हैं।

प्रारंभिक शासक (Early Rulers)

गुप्त राजवंश का प्रथम शासक श्रीगुप्त था। श्रीगुप्त के बाद उसका पुत्र घटोत्कच गुप्त वंश का दूसरा शासक हुआ।

चंद्रगुप्त-प्रथम (319 ई. – 350 ई.)
[Chandragupta-I (319 A.D. – 350 A.D.)]

गुप्त वंश का पहला प्रसिद्ध शासक **चंद्रगुप्त प्रथम** हुआ। वह ऐसा **प्रथम** शासक था जिसने **महाराजाधिराज** की उपाधि धारण की तथा स्वर्ण सिक्के जारी किये। इसके राज्यारोहण (319 – 320 ई.) के साथ **गुप्त संवत्** का आरंभ माना जाता है।

चंद्रगुप्त प्रथम ने गुप्त साम्राज्य का आरंभिक विस्तार किया, फिर अपनी स्थिति को मज़बूत करने के लिये उसने कूटनीतिक पद्धति का भी सहारा लिया। उसने उत्तर भारत के प्रमुख राज्य **लिच्छवि** की राजकुमारी **कुमार देवी** के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किया। इसी विवाह का स्मृति में स्वर्ण सिक्कों का निर्गमन किया।

समुद्रगुप्त (350 ई. – 375 ई.)
[Samudragupta (350 A.D. – 375 A.D.)]

चंद्रगुप्त प्रथम के पुत्र और उत्तराधिकारी **समुद्रगुप्त** ने गुप्त साम्राज्य का अपार विस्तार किया। इसको प्रयाग अभिलेख में लिच्छवी दौहित्र (लिच्छवीयों का नाती) कहा गया है।

समुद्रगुप्त एक महान साम्राज्यवादी था। उसने कई चरणों में अपना विजय अभियान पूरा किया। समुद्रगुप्त के विजय अभियान को पाँच चरणों में बाँटा जा सकता है। प्रथम चरण में उसने गंगा-यमुना दोआब के राज्यों का समूल नाश किया तथा प्रत्यक्ष रूप से अपने साम्राज्य में मिला लिया। द्वितीय चरण में उसने पंजाब के गणराज्य तथा कुछ सीमावर्ती राज्यों को जीता। जो गणराज्य मौर्य साम्राज्य के खंडहरों पर टिमटिमा रहे थे, उन्हें समुद्रगुप्त ने सदा के लिये बुझा दिया। तीसरे चरण में उसने विंध्य क्षेत्र में आटविक राज्यों पर विजय प्राप्त की। फिर चौथे चरण में उसने दक्षिण के बारह राज्यों को जीता। दक्षिण में उसने पल्लवों से अपनी प्रभुसत्ता स्वीकार कराई। अंतिम चरण में उत्तर-पश्चिम में कुछ विदेशी राज्यों को पराजित किया। उसकी बहादुरी एवं युद्ध कौशल के कारण ही **वी.ए. स्मिथ** ने उसे **भारत का नेपोलियन** कहा है। हालाँकि समुद्रगुप्त की विजयों की सूचना का आधार **हरिषेण** लिखित प्रयाग प्रशस्ति है, यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि हरिषेण एक दरबारी लेखक था। अत: प्रयाग प्रशस्ति में दिया गया विवरण अतिशयोक्तिपूर्ण भी हो सकता है। इन सीमाओं के बावजूद भी हम अध्ययन के स्रोत के रूप में इसे खारिज नहीं कर सकते, क्योंकि इसके द्वारा दिये गए कम-से-कम कुछ विवरण अन्य स्रोतों से परिपुष्ट हुए हैं। उदाहरण के लिये वाकाटक अभिलेख से कुछ विवरणों की परिपुष्टि हुई है।

अपनी विजयों के परिणामस्वरूप समुद्रगुप्त ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की जो उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में विंध्य पर्वत तक तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी से लेकर पश्चिम में पूर्वी मालवा तक विस्तृत था। समुद्रगुप्त ने एक बड़े क्षेत्र पर कब्ज़ा किया, किंतु उसका प्रत्यक्ष नियंत्रण सीमित क्षेत्रों पर ही रहा था। दूरवर्ती क्षेत्रों में उसने शासकों को शासन इस शर्त पर करने दिया कि वे अधीनता स्वीकारें (आत्मा-निवेदन), वैवाहिक संबंध बनाए (कन्योपायन-कन्यादान करें) और गुप्तों की गरुण मुद्रा को अपने राज्य में चलाए। समुद्रगुप्त स्वयं उच्चकोटि का विद्वान तथा विद्या का उदार संरक्षक था। अपने कुछ सिक्कों पर उसने स्वयं को **वीणा बजाते** हुए दिखाया है। उसने **'कविराज'** की उपाधि भी धारण की थी।

चंद्रगुप्त द्वितीय (375 ई. – 415 ई.)
[Chandragupta–II (375 A.D. – 415 A.D.)]

- समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारी **चंद्रगुप्त द्वितीय** के शासनकाल में गुप्त साम्राज्य अपने उत्कर्ष की चोटी पर पहुँचा। द्वितीय, जो कि **चंद्रगुप्त विक्रमादित्य** के नाम से भी जाना जाता है, ने अपने पिता की विस्तारवादी नीतियों के साथ अपने पितामह के सैनिक गठबंधन की नीति को भी जोड़ दिया।
- दिल्ली के **महरौली** स्थित **अभिलेख** में एक चंद्र नामक शासक की विजय का वर्णन है। इस शासक की पहचान चंद्रगुप्त द्वितीय के

10 गुप्तोत्तर काल (Post-Gupta Age)

गुप्त वंश के पतन के बाद भारतीय प्रायद्वीप के राजनीतिक इतिहास में नवीन प्रवृत्ति का आविर्भाव हुआ। इस प्रवृत्ति में विकेंद्रीकरण और क्षेत्रीयता की भावना का प्रादुर्भाव था। 550 ई. के लगभग गुप्त साम्राज्य के विखंडित होने के साथ ही कई सामंतों एवं शासकों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित करते हुए नवीन राजवंशों की स्थापना की।

प्रमुख राजवंश (Major Dynasty)

गुप्तोत्तर काल की एक अन्य महत्त्वपूर्ण गतिविधि भारत में इस्लाम धर्म का प्रवेश था, जो अरबों के माध्यम से हुआ। हर्षवर्धन के रूप में सशक्त शक्ति का उदय होने तक उत्तरी तथा पश्चिमी भारत की राजनीति में अनेक छोटे-छोटे राजवंशों का उदय हुआ।

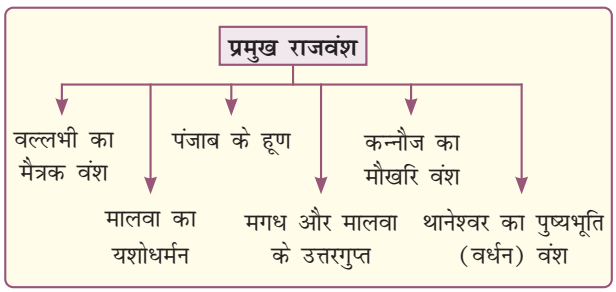

वल्लभी का मैत्रक वंश *(Maitraka Dynasty of Vallabhi)*

मैत्रक वंश का उदय गुजरात के वल्लभी में हुआ। इस वंश की स्थापना भट्टार्क नामक गुप्तकालीन सैनिक अधिकारी के द्वारा की गई। भट्टार्क के उत्तराधिकारियों ने सौराष्ट्र (काठियावाड़) में शक्तिशाली राज्य स्थापित किया। भट्टार्क के उत्तराधिकारियों में धरसेन, द्रोणसिंह और ध्रुवसेन प्रमुख शासक थे। इस वंश के शासकों ने अपनी **राजधानी वल्लभी** को बनाया, यह हर्षवर्धन का समकालीन था। हर्ष ने अपनी पुत्री का विवाह ध्रुवसेन द्वितीय से कर मैत्रकों से संबंध स्थापित किये। ध्रुवसेन के काल में वल्लभी शिक्षा तथा व्यापार-वाणिज्य का प्रमुख केंद्र था। इसी समय चीनी यात्री ह्वेनसांग ने **वल्लभी की यात्रा** की थी। **ध्रुवसेन द्वितीय** इस वंश का सर्वाधिक शक्तिशाली शासक था। ध्रुवसेन द्वितीय के पश्चात उसका पुत्र धरसेन चतुर्थ शासक बना। वह मैत्रक वंश का प्रथम शासक था जिसने 'परमभट्टारक', महाराजाधिराज, परमेश्वर, चक्रवर्त्तिन' जैसी सार्वभौम नरेश की उपाधियाँ धारण की। मैत्रक वंश का अंतिम शासक शिलादित्य सप्तम था। जो 766 ई. में शासन कर रहा था। आठवीं शतीं के अंत तक मैत्रक वंश स्वतंत्र रूप से करता रहा अंततः अरब आक्रमणकारियों ने मैत्रक राजा की हत्या कर वल्लभी को पूर्णतया नष्ट कर दिया।

मैत्रक वंश के शासक बौद्ध धर्म में आस्था रखते थे तथा उन्होंने बौद्ध विहारों को दान दिया। इस समय वल्लभी शिक्षा का प्रमुख केंद्र बन गया। इसके साथ ही वल्लभी व्यापार एवं वाणिज्य का प्रमुख केंद्र भी था।

वल्लभी विश्वविद्यालय

इतिहास का अवलोकन करने के उपरांत भारत का सबसे पुराना विश्वविद्यालय तक्षशिला तथा सबसे विख्यात विश्वविद्यालय नालंदा को माना जाता है, परंतु वल्लभी विश्वविद्यालय की अपनी अलग पहचान थी। ऐसा कहा जाता है कि यहाँ के विद्यार्थी प्रशासनिक पदों पर सबसे अधिक नियुक्त होते थे। चीनी यात्री इत्सिंग सातवीं शताब्दी में वल्लभी आया तथा इस शिक्षा केंद्र की प्रशंसा की। यहाँ के आचार्यों में 'गणभूति' और 'स्थिरमति' का नाम उल्लेखनीय है।

मालवा का यशोधर्मन *(Yashodharman of Malwa)*

मालवा के यशोधर्मन राज्य का उदय छठी शताब्दी के आरंभिक काल में हुआ। यशोधर्मन की उपलब्धियों का वर्णन हमें मंदसौर के दो अभिलेखों से प्राप्त होता है। मंदसौर प्रशस्ति यशोधर्मन का चित्रण उत्तर भारत के चक्रवर्ती शासक के रूप में करती है। यशोधर्मन द्वारा हूणों की पराजय उसकी महानतम उपलब्धियों में से एक थी। यशोधर्मन का राज्य पूर्व में लौहित्य (ब्रह्मपुत्र नदी) से लेकर पश्चिम में समुद्र तक तथा उत्तर में हिमालय से दक्षिण में महेंद्र पर्वत तक विस्तृत था। मंदसौर प्रशस्ति में उसे 'जनेंद्र' कहा गया।

यशोधर्मन का दूसरा नाम विष्णुवर्धन था। उसने राजाधिराज, परमेश्वर और नराधिपति की उपाधि धारण की थी। **वह शिवभक्त था।** अभिलेखों में उसके अच्छे शासन और सद्गुणों के कई उल्लेख हैं। उसकी तुलना मनु, भरत, अलर्क और मांधाता से की गई है। यशोधर्मन ने अपने शिलालेखों में अपने को औलिकरवंशी तथा सूर्यवंशी इक्ष्वाकु का वंशज कहा है। यशोधर्मन के शासन का अंत कब और कैसे हुआ तथा औलिकर वंश में और कौन-से शासक हुए, इस संबंध में अभी तक कुछ भी ज्ञात नहीं है। संभवतः यशोधर्मन के पश्चात् दशपुर क्षेत्र पर औलिकरों की राजनीतिक सत्ता कुछ काल तक बनी रही, छठी सदी के प्रारंभ में कलचुरी शंकरगण तथा बाद में मैत्रकों का प्रभाव इस क्षेत्र पर फैलने पर औलिकरों का पतन हो गया।

पंजाब के हूण *(Hoon of Punjab)*

हूण मध्य एशिया के निवासी थे। ये खानाबदोश और बर्बर थे। कालांतर में इनकी दो शाखाएँ हो गईं। हूणों की पूर्वी शाखा ने भारत पर कई आक्रमण किये। यह शाखा इतिहास में 'एक्थलाइट' अथवा 'श्वेत हूण' के नाम से जानी जाती है। चीनी साहित्य में हूणों को 'हुंग-नू' कहा

11 दक्षिण भारत (South India)

प्राचीन भारतीय इतिहास में गुप्तकाल के पतन के बाद राजनीतिक गतिविधियों के केंद्र में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। एक ओर मगध जो अभी तक राजनीति का प्रमुख केंद्र था, अब उसकी महत्ता समाप्त हो गई, वहीं दूसरी ओर आगामी 200 वर्षों तक संपूर्ण उत्तरी भारत अस्थिर रहा। यद्यपि हर्ष ने कुछ समय तक स्थिरता प्रदान करने का प्रयास किया था, परंतु लगभग 550-750 ई. के काल में राजनीति का केंद्र दक्षिण भारत हो गया, जो दो मुख्य राजवंशों चालुक्य एवं पल्लव का प्रमुख संघर्ष स्थल था।

चालुक्य वंश (Chalukya Dynasty)

चालुक्य वंश प्राचीन दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध क्षत्रिय राजवंश था। इस वंश ने 750 ई. तक (लगभग 200 वर्षों तक) दक्षिण भारत के इतिहास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। चालुक्य सातवीं सदी में अपने महत्तम विस्तार के समय में वर्तमान समय के पश्चिमी महाराष्ट्र, दक्षिणी मध्य प्रदेश, तटीय दक्षिणी गुजरात तथा पश्चिमी आंध्र प्रदेश में फैला हुआ था। चालुक्य लोग स्वयं को **ब्रह्मा, मनु या चंद्र के वंशज मानते थे।** अपनी वैधता व प्रतिष्ठा को अर्जित करने के लिये उन्होंने अपने पूर्वजों को अयोध्या का पूर्व शासक भी घोषित किया। आगे चलकर ये चार प्रमुख शाखाओं में बँट गए जिनमें बादामी (वातापी) के चालुक्य, कल्याणी के चालुक्य (पश्चिम), वेंगी के चालुक्य तथा अन्हिलवाड़ा (लाट) के सोलंकी चालुक्य शामिल थे।

सामान्य परिचय (General introduction)

वास्तविक संस्थापक : पुलकेशिन प्रथम (550 – 567 A.D)
प्रारंभिक राजधानी: बादामी या वातापी वर्तमान बीजापुर (कर्नाटक)
सबसे शक्तिशाली शासक: पुलकेशिन-द्वितीय

पुलकेशिन द्वितीय (Pulakeshin-II)

- इसने 609 ईसवी से 642 ई. तक शासन किया।
- उत्तरी कोंकण के मौर्य शासकों, मैसूर के गंग व वेंगी के पल्लवों को पराजित किया।
- कदंब, चोल, केरल, लाट, मालवा व गुर्जर प्रदेशों को जीतकर उत्तर में माही नदी तक अपने राज्य का विस्तार किया।
- नर्मदा तट पर हर्ष को पराजित कर **'परमेश्वर'** की उपाधि धारण की।
- उसने पर्सिया के शासक खुसरो द्वितीय के दरबार में एक दूतमंडल भी भेजा था।
- पुलकेशिन के बाद उसका पुत्र विक्रमादित्य-प्रथम शासक बना।
- इससे संबंधित जानकारी ऐहोल अभिलेख से मिलती है।

चालुक्यों की उत्पत्ति के संदर्भ में विवाद है। ऐसा माना जाता है कि वे प्रारंभ में कदंब राजाओं की अधीनता में कार्य करते थे। चालुक्यों की मूल शाखा बादामी या वातापी के शासकों ने छठी से आठवीं शताब्दी के मध्य शासन किया, तत्पश्चात् वेंगी व कल्याणी के चालुक्य प्रमुख शक्ति के रूप में उभरे। चालुक्य वंश के संस्थापक वैसे तो जयसिंह थे, परंतु वास्तविक **संस्थापक पुलकेशिन प्रथम** को माना जाता है। इस वंश का **सबसे शक्तिशाली शासक पुलकेशिन द्वितीय** था। अपने समकालीन पल्लव शासकों से संघर्ष के कारण चालुक्य शासकों की शक्ति क्षीण होने लगी और इनके सामंत शक्तिशाली बनने लगे। कीर्तिवमन द्वितीय बादामी के चालुक्य वंश का अंतिम शासक था। एक सामंत **दंतिदुर्ग** ने वातापी के **चालुक्यों** के **शासन** को **समाप्त कर राष्ट्रकूट राजवंश की नींव डाली।**

नोट: विष्णुवर्धन (लगभग 615-633 ई.) ने वेंगी के चालुक्य, तैल/तैलप द्वितीय ने कल्याणी के चालुक्य और मूलराज ने अन्हिलवाड के सोलंकी-वंश की स्थापना की।

चालुक्यकालीन राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक स्थिति *(Political, Economic and Social Status of Chalukyan)*

राजनीतिक और प्रशासनिक स्थिति (Political and Administrative Status)

वातापी या बादामी के चालुक्यों ने लगभग दो शताब्दियों तक दक्षिण भारत पर शासन किया। वे मूलत: धर्मनिष्ठ हिंदू थे और उन्होंने धर्मशास्त्रों के अनुसार शासन किया। प्राचीन शास्त्रों में विहित राजतंत्र प्रणाली इस काल में भी सर्वप्रचलित शासन पद्धति थी। चालुक्यकालीन प्रशासन का केंद्र सम्राट होता था। उन्होंने अश्वमेध, वाजपेय आदि अनेक वैदिक यज्ञों का अनुष्ठान किया। राजपद वंशानुगत होता था। राजा प्रशासन की संपूर्ण समस्याओं में स्वयं रुचि लेता था। युद्ध के समय राजा स्वयं सेना का संचालन करता था तथा इस काल में रानियों की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण थी, जैसे–कीर्तिवर्मन द्वितीय की महारानी महादेवी उसके साथ रक्तपुर के स्कंधावार में उपस्थित थी।

चालुक्य लेखों में किसी मंत्रिपरिषद का उल्लेख नहीं मिलता है। प्रशासन में मुख्यत: राजपरिवार के सदस्य ही शामिल थे। राजा अपने परिवार के विभिन्न सदस्यों को उनकी योग्यतानुसार प्रशासनिक पदों पर नियुक्त करता था, जैसे- पुलकेशिन द्वितीय ने अपने भाई विष्णुवर्धन को वेंगी का गवर्नर नियुक्त किया था। राजा के आदेश प्राय: मौखिक ही होते थे, जिन्हें सचिव लिपिबद्ध करके संबंधित अधिकारियों या व्यक्तियों के पास भेजते थे।

- सामंत (तत्पादपद्मोपजीवी) अपने-अपने क्षेत्रों में स्वतंत्रतापूर्वक शासन करते थे। इनकी अलग राजधानी होती थी, जहाँ ये अपना दरबार लगाते थे। इनके अपने मंत्री तथा अन्य अधिकारी भी होते थे।

12 पूर्व-मध्यकालीन भारत (Pre-Medieval India)

भारतीय इतिहास में काल विभाजन एक बहुत बड़ी समस्या रही है। सामान्यत: 8वीं से 11वीं शताब्दी के काल को पूर्व मध्यकाल की संज्ञा दी जाती है। राजनीतिक विकेंद्रीकरण, छोटे-छोटे राज्यों का उदय एवं उनका आपसी संघर्षरत होना जहाँ इस काल की राजनीतिक स्थिति को दर्शाता है, वहीं बंद अर्थव्यवस्था, सामंती सामाजिक जीवन, धर्म में विविधता इस काल की प्रमुख आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक विशेषता थी।

पाल, गुर्जर-प्रतिहार एवं राष्ट्रकूट वंश (Pala, Gurjar - Pratihar and Rashtrakut Dynasty)

आठवीं से दसवीं शताब्दी तक का समय भारतीय इतिहास में राजसत्ताओं के त्वरित उत्थान-पतन का काल रहा। इस समय उत्तर भारत और दक्कन में कई शक्तिशाली साम्राज्यों का उदय हुआ। छठी शताब्दी के अंतिम चरण में गुप्त साम्राज्य के पतन के साथ ही इतिहास के एक महान युग का अंत हो गया। इसके साथ ही 1000 वर्षों से राजनीति का केंद्र रहे मगध का महत्त्व भी हमेशा के लिये समाप्त हो गया। संक्रमण के इस काल में उत्तर भारत में कन्नौज राजनीति के आकर्षण का नया केंद्र बनकर उभरा। सातवीं सदी में हर्ष के राज्यारोहण के बाद कन्नौज की सत्ता अपने चरम उत्कर्ष पर थी। हर्ष के शासनकाल तक उत्तर भारत की राजनीतिक सत्ता अक्षुण्ण बनी रही, परंतु 647 ई. में हर्ष की मृत्यु के साथ ही उत्तर भारत में राजनीतिक अराजकता पैदा हो गई। इसी पृष्ठभूमि में नए राजवंशों व राज्यों को उदय होने का अवसर मिला।

कन्नौज पर आधिपत्य को लेकर तीन गुटों में कई वर्षों तक संघर्ष चलता रहा। ये तीन गुट थे- पाल, गुर्जर-प्रतिहार तथा राष्ट्रकूट। इनमें से पाल साम्राज्य का नवीं सदी के मध्य तक पूर्वी बंगाल में बोलबाला रहा। पश्चिमी भारत और ऊपरी गंगा की घाटी में दसवीं सदी तक प्रतिहार साम्राज्य की तूती बोलती थी। उधर दक्कन में राष्ट्रकूटों का वर्चस्व था, जो समय-समय पर उत्तर और दक्षिण भारत के प्रदेशों पर भी अपना नियंत्रण स्थापित कर लेते थे। यद्यपि इन तीनों साम्राज्यों के बीच संघर्ष चलता रहा, तथापि इनमें से प्रत्येक ने काफी बड़े-बड़े क्षेत्रों को स्थिरतापूर्ण जीवन की परिस्थितियाँ प्रदान की और साहित्य तथा कला को संरक्षण दिया। तीनों में सबसे दीर्घायु राष्ट्रकूट साम्राज्य साबित हुआ। इस साम्राज्य ने न केवल विपुल शक्ति अर्जित की, बल्कि आर्थिक व सांस्कृतिक क्षेत्रों में उत्तर और दक्षिण के बीच सेतु का काम भी किया। यहाँ हम पाल, गुर्जर-प्रतिहार तथा राष्ट्रकूट राजवंशों के विषय में क्रमश: अध्ययन करेंगे।

पाल वंश *(Pala Dynasty)*

पाल वंश की स्थापना संभवत: 750 ई. के आस-पास बंगाल (गौड़) में हुई थी। **शशांक** की मृत्यु के पश्चात् लगभग एक शताब्दी तक बंगाल में अराजकता और अव्यवस्था का माहौल बना हुआ था। उस क्षेत्र में फैली अराजकता से तंग आकर वहाँ के लोगों ने **गोपाल** को शासक चुना। यह पहला राजा था, जिसका जनता के द्वारा निर्वाचन हुआ। उसने गौड़ में फिर से सुव्यवस्था स्थापित की तथा करीब दो दशकों तक शासन किया। वह बौद्ध धर्म का अनुयायी था तथा उसने ओदंतपुरी महाविहार की स्थापना भी की थी। 770 ई. में उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र **धर्मपाल** राजा बना।

धर्मपाल ने बंगाल पर 770 से 810 ई. तक शासन किया। उसने सर्वप्रथम राज्य का विस्तार किया। कुछ समय के लिये उसने कन्नौज पर भी अपना अधिकार स्थापित किया था तथा उसने **'उत्तरापथस्वामिन्'** की उपाधि धारण की। वह बौद्ध धर्मानुयायी था, किंतु वह अन्य धर्मों के प्रति भी सहिष्णु था। बिहार और आधुनिक पूर्वी उत्तर प्रदेश पर अपना-अपना नियंत्रण स्थापित करने के लिये पालों और प्रतिहारों के मध्य संघर्ष चलता रहा। यद्यपि बंगाल के साथ-साथ बिहार पर पालों का ही अधिक समय तक नियंत्रण कायम रहा।

धर्मपाल का उत्तराधिकारी उसका पुत्र **देवपाल** अगला शासक बना। देवपाल ने 810 से 850 ई. तक शासन किया तथा इसने भी साम्राज्य विस्तार की नीति जारी रखी। उसने मुंगेर को अपनी राजधानी बनाया तथा प्रागज्योतिषपुर (असम) और उड़ीसा के कुछ हिस्सों को अपने साम्राज्य में मिला लिया। संभवत: आधुनिक नेपाल के एक हिस्से पर भी पाल प्रभुत्व स्थापित हो गया तथा उसने तिब्बत तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के शैलेंद्र साम्राज्य (सुमात्रा) से अपना सांस्कृतिक एवं व्यापारिक संबंध बनाए रखा। सुमात्रा के एक शासक, बलपुत्रदेव ने उससे नालंदा में एक मठ की स्थापना की अनुमति भी प्राप्त की। अरब यात्री सुलेमान ने देवपाल की शक्ति का वर्णन एवं साम्राज्य विस्तार की जानकारी दी है। देवपाल की मृत्यु के बाद पाल वंश का पतन शुरू हो गया। उसके उत्तराधिकारी **नारायण पाल** को प्रतिहार शासक मिहिरभोज तथा महेंद्रपाल के हाथों पराजय का सामना करना पड़ा तथा उसने, उनके हाथों मगध का क्षेत्र भी खो दिया। उसके उत्तराधिकारी **राज्यपाल** ने राष्ट्रकूटों के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करके, खोए हुए क्षेत्र को पुन: प्राप्त किया।

पाल वंश का पुनरुद्धार **महिपाल** के द्वारा हुआ, किंतु चोल शासक राजेंद्र प्रथम के आक्रमण (1022-23 ई.) से राज्य को आर्थिक एवं सामाजिक क्षति उठानी पड़ी। महिपाल का उत्तराधिकारी **नयपाल** था, जिसने प्रारंभ में कलचुरियों से युद्ध किया, किंतु बाद में कलचुरी राजकुमारी से विवाह कर लिया।

नयपाल की मृत्यु के बाद अव्यवस्था फैल गई, जिसका अंत **रामपाल** ने किया। उसने उत्तरी बंगाल, असम, उड़ीसा पर पुन: नियंत्रण स्थापित किया, किंतु सेन शासकों के हाथों पूर्वी बंगाल तथा मिथिला (कर्नाटों के हाथों) को खो दिया। संध्याकर नंदी के रामचरित का नायक वही है।

पाल वंश का अंतिम शासक **गोविंद पाल** था। यह संभवत: बख्तियार खिलजी के आक्रमण के समय बंगाल में शासन कर रहा था। हालाँकि यह नाममात्र का शासक था तथा 12वीं शताब्दी के अंत में बंगाल का पाल राज्य, सेनवंश के अधिकार में चला गया।

खंड B

मध्यकालीन भारत

(बिहार के विशेष संदर्भ सहित)

13 मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्रोत
(Sources of Medieval Indian History)

प्राचीन भारतीय इतिहास की तुलना में मध्यकालीन भारतीय इतिहास से संबंधित ऐतिहासिक सामग्री प्रचुर मात्रा में है। इसका मुख्य कारण प्राचीन काल में ऐतिहासिक ग्रंथों का अभाव या फिर उनकी उपलब्धता की कमी है। मध्यकालीन भारतीय इतिहास जानने के लिये ऐतिहासिक स्रोतों की कमी नहीं है। इतिहास लेखन में मुस्लिम सुल्तान और उलेमा रुचि रखते थे। मुस्लिम इतिहासकारों ने सुल्तान और उनकी भारतीय विजयों का विस्तृत विवरण दिया है। साहित्यिक स्रोतों के अतिरिक्त मध्यकालीन भारत में विदेशी यात्रियों के यात्रा वृत्तांत, शिक्षित सुल्तानों की आत्मकथा, विजय अभियानों के बाद स्थापित विजय स्मारक, विजय स्तंभ आदि ऐतिहासिक स्रोतों से भी पर्याप्त जानकारी मिलती है।

सल्तनत काल में फारसी और अरबी पुस्तकों की रचना की गई। हालाँकि इनके लेखकों को हम वैज्ञानिक इतिहासकारों की श्रेणी में नहीं रख सकते, क्योंकि सामान्यत: वे केवल तात्कालिक शासकों के कार्यकलापों तक ही सीमित थे, परंतु इन रचनाओं से सल्तनतकालीन इतिहास और कालक्रम की पर्याप्त जानकारी मिलती है।

सल्तनतकालीन प्रमुख ऐतिहासिक स्रोत
(Major Historical Sources of Sultnate Period)

साहित्यिक साक्ष्य *(Literary evidence)*

फारसी तथा अरबी साहित्य

तुर्क-अफगान शासक मूलत: सैनिक थे और स्वयं शिक्षित नहीं थे। हालाँकि उन्होंने इस्लामी विधाओं और कलाओं को प्रोत्साहन दिया। प्रत्येक सुल्तान के दरबार में फारसी लेखकों, विद्वानों तथा कवियों का जमावड़ा लगा रहता था। उनकी रचनाओं से उस काल के इतिहास की महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ मिलती हैं। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है:

तारीख-उल-हिंद

- इस पुस्तक की रचना अलबरूनी द्वारा की गई। वह महमूद गज़नवी के आक्रमण के समय भारत आया था। वह अरबी और फारसी भाषा का ज्ञाता था।
- अपनी इस पुस्तक में उसने 11वीं शताब्दी के प्रारंभ में हिंदुओं के साहित्य, विज्ञान तथा धर्म का आँखों देखा सजीव वर्णन किया है। इस पुस्तक के अध्ययन से तात्कालिक सामाजिक दशा का पर्याप्त ज्ञान होता है। यह पुस्तक 'किताब-उल-हिंद' के नाम से भी प्रसिद्ध है।

चचनामा

- यह अरबी भाषा में (आँठवी सदी) लिखी गई है। इस पुस्तक के लेखक का नाम ज्ञात नहीं है। मुहम्मद अली-बिन-अबूबकर कुफी ने नासिरुद्दीन कुबाचा के समय में (1216-17 ई.) इसका फारसी में अनुवाद किया।
- 'चचनामा' अरबों की सिंध-विजय की जानकारी का मूल स्रोत है।

ताज़-उल-मासिर

- इसकी रचना हसन निज़ामी द्वारा की गई। इस पुस्तक में 1192 ई. से 1228 ई. तक के भारत की घटनाओं का विवरण दिया गया है। इसमें राजनीतिक घटनाओं के साथ-साथ सामाजिक तथा धार्मिक जीवन का उल्लेख भी किया गया है। दिल्ली सल्तनत के प्रारंभिक दिनों का प्रामाणिक इतिहास इस पुस्तक में पर्याप्त रूप से मिलता है।
- यह अरबी एवं फारसी दोनों भाषाओं में लिखी गई है।

तारीख-ए-फिरोज़शाही

- 'तारीख-ए-फिरोज़शाही' ज़ियाउद्दीन बरनी की कृति है। वह तुगलक शासकों का समकालीन था। 'तारीख-ए-फिरोज़शाही' में बलबन के सिंहासनारोहण से लेकर फिरोज़शाह तुगलक के शासनकाल के छठे वर्ष तक का वर्णन है। इस रचना में उस काल के सामाजिक, आर्थिक जीवन तथा न्याय सुधारों का वर्णन किया गया है।
- चूँकि, बरनी राजस्व अधिकारी के पद पर कार्यरत था अत: उसने अपनी पुस्तक में राजस्व स्थिति का वर्णन स्पष्ट एवं विस्तारपूर्वक किया है। उसने इस ग्रंथ में तत्कालीन संतों, दार्शनिकों, इतिहासकारों, कवियों, चिकित्सकों आदि के विषय में भी लिखा है। इसके साथ ही अलाउद्दीन ख़िलजी के शासनकाल की सामाजिक तथा आर्थिक दशा का इस पुस्तक में सजीव वर्णन मिलता है।
- इस पुस्तक की एक सीमा धार्मिक पक्षपात है। हालाँकि समकालीन इतिहास वर्णन की दृष्टि से इसका ऐतिहासिक महत्त्व है।

फुतूहात-ए-फिरोज़शाही

इसमें फिरोज़शाह तुगलक के शासन प्रबंध के बारे में विस्तृत जानकारी दी गई है। इसमें फिरोज़शाह तुगलक के सैन्य अभियानों का वर्णन किया गया है। इसके विषय में कहा जाता है कि स्वयं फिरोज़शाह तुगलक ने इसे लिखा है।

जैनुल अखबार

- इस पुस्तक के लेखक अबी सईद थे। इसमें ईरान के इतिहास का वर्णन किया गया है।
- इस पुस्तक से महमूद गज़नवी के जीवन तथा क्रियाकलापों की जानकारी मिलती है।

तबकात-ए-नासिरी

- इस पुस्तक का लेखक मिन्हाज-उस-सिराज है, जिसने मुहम्मद गौरी की भारत विजय से लेकर 1259-60 ई. तक का भी वर्णन किया है।
- हालाँकि इस पुस्तक में निष्पक्ष रूप से घटनाओं का वर्णन नहीं किया गया है, फिर भी अनेक विद्वानों ने इस पुस्तक की प्रशंसा की है। 'फरिश्ता' इस पुस्तक को उच्चकोटि की रचना मानता है।

14 भारत में तुर्कों का आगमन
(Arrival of Turks in India)

तुर्कों के आक्रमण के पूर्व अरबों ने भारत पर आक्रमण किया, किंतु भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना का श्रेय तुर्कों को जाता है। मुस्लिम आक्रमण के समय भारत में एक बार पुनः विकेन्द्रीकरण तथा विभाजन की परिस्थितियाँ सक्रिय हो उठी। तुर्क आक्रमण भारत में कई चरणों में हुए। प्रथम चरण का आक्रमण 1000 से 1027 ई. के बीच गज़नी के शासक महमूद गज़नवी द्वारा किया गया। इसके पूर्व सुबुक्तगीन (महमूद के पिता) की लड़ाई हिन्दूशाही शासकों के साथ हुई थी, किंतु उसका क्षेत्र सीमित था। भारत के गुजरात क्षेत्र तक महमूद ने अपना शासन स्थापित किया, लेकिन उत्तरी भारत के शेष क्षेत्र अभी तुर्क प्रभाव से बाहर थे। कालांतर में गौर के शासक शिहाबुद्दीन मुहम्मद गौरी ने पुनः भारत में सैनिक अभियान प्रारंभ किया। 1175 से 1206 ई. के बीच उसने और उसके दो प्रमुख सेनापतियों (ऐबक और बख्तियार खिलजी) ने गुजरात, पंजाब से लेकर बंगाल तक के क्षेत्र को जीतकर सत्ता स्थापित की। किंतु 1206 ई. में गौरी की मृत्यु के पश्चात् तुर्क साम्राज्य कई हिस्सों में बँट गया और आगे चलकर भारत में दिल्ली सल्तनत के नाम से तुर्क साम्राज्य स्थापित हुआ।

तुर्कों के आक्रमण से पूर्व भारत की राजनीतिक स्थिति (Political situation of India before the invasion of Turks)

- मुल्तान तथा सिंध दोनों क्षेत्र 8वीं सदी के आरंभ में ही अरबों द्वारा विजित कर लिये गए थे। सिंध में अरबों की सत्ता के अवशेष अब भी बचे हुए थे।
- **हिन्दूशाही** राजवंश उत्तर-पश्चिम भारत का विशाल हिन्दू राज्य था, जिसकी सीमा कश्मीर से मुल्तान तक तथा चिनाब नदी से लेकर हिन्दुकुश तक फैली हुई थी। महमूद ने इसकी राजधानी **वैहिंद** पर आक्रमण कर दिया। यहाँ का शासक **जयपाल** था जिसने पराजित होने पर आत्महत्या कर ली।
- उत्तरी भारत में स्थित कश्मीर का क्षेत्र महमूद गज़नवी के आक्रमण के समय से राजनीतिक अव्यवस्था से ग्रसित था। यहाँ की वास्तविक शासिका क्षेमेन्द्र गुप्त की पत्नी **दीद्दा** थी।
- इसके अतिरिक्त मुस्लिम आक्रमण के समय उत्तरी भारत में अनेक छोटे-छोटे राज्यों का अस्तित्व था। जैसे– सिंध, मुल्तान, पंजाब, दिल्ली, बंगाल आदि।
- भारत का इस समय बाह्य देशों के साथ कोई विशेष संबंध नहीं था। राज्यों का आर्थिक आधार कमज़ोर था, जिसके फलस्वरूप सैन्य आधार भी कमज़ोर हो गया था।

राजनीतिक विभाजन की यह समस्या केवल राजपूत राज्यों तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि इसका परिणाम देश के सामान्य जनजीवन पर भी पड़ा था। उत्तर भारत में राजनीतिक एकता का पूर्णतः अभाव था। इस समय देश में छोटे-छोटे राज्यों का अस्तित्व था, इस कारण से इस समय कोई भी एक राज्य या शासक इतना शक्तिशाली नहीं था जो इन्हें जीतकर एकछत्र राज्य स्थापित कर सके। आंतरिक कलह ने इन्हें कमज़ोर बना दिया था और विदेशी आक्रमण का प्रभावशाली ढंग से विरोध करना इनके लिये संभव नहीं था। इस स्थिति के लिये राजपूत शासक स्वयं भी ज़िम्मेदार थे, क्योंकि ये हमेशा आपस में संघर्षरत रहते थे। आंतरिक अशांति की इस परिस्थिति ने अंततः राजपूत शासकों का अस्तित्व समाप्त कर दिया।

महमूद गज़नवी का आक्रमण (Invasion of Mahmood Ghaznavi)

महमूद गज़नवी, गज़नी के शासक **सुबुक्तगीन** का पुत्र था। सन् 998 ई. में वह गज़नी का सुल्तान बना। महमूद गज़नवी प्रथम शासक था जिसने **सुल्तान** की उपाधि धारण की। वह एक दूरदर्शी एवं महत्त्वाकांक्षी शासक था। उसने भारतीय धन-सम्पदा लूटने हेतु सन् 1000 से 1027 ई. के बीच लगभग **17 बार** आक्रमण किया। उसके द्वारा भारत पर किये गए **प्रमुख आक्रमण** को निम्नलिखित बिंदुओं में देखा जा सकता है–

- महमूद गज़नवी ने पहला आक्रमण 1000 ई. में हिन्दुशाही राज्य के सीमावर्ती नगरों पर किया और उन क्षेत्रों के कुछ दुर्गों पर अधिकार करने के बाद वापस गज़नी चला गया।
- महमूद ने दूसरा आक्रमण 1001 ई. में **हिन्दुशाही** शासक जयपाल पर किया और उसकी राजधानी **वैहिन्द** अथवा **उदभाण्डपुर** पर अधिकार कर लिया। उसने जयपाल को बंदी भी बना लिया था परन्तु धन लेकर उसे छोड़ दिया।
- सन् 1005 ई. में महमूद ने **मुल्तान** पर आक्रमण किया और वहाँ के शासक **करामिता** संप्रदाय के **फतह दाउद** को पराजित किया परन्तु 1010 ई. के दूसरे मुल्तान आक्रमण में उस पर अधिकार कर लिया।
- सन् 1018 ई. में महमूद ने सर्वप्रथम गंगा घाटी के क्षेत्र पर आक्रमण किया। इस समय यहाँ **गुर्जर प्रतिहार** शासक **राज्यपाल** का शासन था और उसकी राजधानी **कन्नौज** थी। महमूद ने कन्नौज और मथुरा को लूटा तथा मार्ग में बुलंदशहर के राजा हरदत्त ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली।
- सन् 1019-20 में **उसने** चंदेल शासक को दण्डित करने के लिये अभियान किया और **कालिंजर** (बुंदेलखंड) के शासक को पराजित किया था।

15 दिल्ली सल्तनत (1206–1526 ई.)
[(Delhi Sultanate 1206-1526 AD.)]

सन् 1206 ई. में मुहम्मद गौरी की आकस्मिक मृत्यु के कारण उत्तराधिकारी के संबंध में कोई निश्चित निर्णय नहीं लिया जा सका। गौरी का कोई पुत्र नहीं था, बल्कि उसके कई दास थे, उन दासों में तीन की स्थिति लगभग एकसमान थी। अतः उन तीनों ने आपस में उसके साम्राज्य को बाँट लिया। इसके अंतर्गत यल्दौज को गज़नी का राज्यक्षेत्र, कुबाचा को सिंध और मुल्तान का क्षेत्र तथा कुतुबुद्दीन ऐबक को भारतीय राज्यक्षेत्रों पर अधिकार प्राप्त हुआ।

सन् 1206 ई. से 1290 ई. तक उत्तर भारत के कुछ भागों पर जिन तुर्क शासकों ने शासन किया उन्हें गुलाम वंश, मामलुक वंश, इल्बारी वंश व प्रारंभिक तुर्क आदि नामों से जाना जाता है।

गुलाम वंश (Slave/Gulam Dynasty)

तेरहवीं शताब्दी की शुरुआत में तुर्कों द्वारा भारत में स्थापित प्रथम साम्राज्य को **गुलाम वंश** का नाम दिया गया। गुलाम वंश की स्थापना कुतुबुद्दीन ऐबक ने की थी, जो मुहम्मद गौरी का एक प्रमुख गुलाम था तथा आरम्भिक तुर्क साम्राज्य को सुदृढ़ करने वाले सुल्तान इल्तुतमिश, बलबन आदि किसी न किसी शासक के गुलाम ही थे।

गुलाम वंश के शासक

शासक	शासनकाल
कुतुबुद्दीन ऐबक	1206-1210 ई.
आरामशाह	1210 (केवल कुछ महीने)
शम्सुद्दीन इल्तुतमिश	1210-1236 ई.
रुकनुद्दीन फिरोज़शाह	1236 ई.
रज़िया सुल्तान	1236-1240 ई.
मुइज़ुद्दीन बहरामशाह	1240-1242 ई.
अलाउद्दीन मसूदशाह	1242-1246 ई.
नासिरुद्दीन महमूद	1246-1266 ई.
गयासुद्दीन बलबन	1266-1287 ई.
मोइज़ुद्दीन कैकुबाद	1287-1290 ई.
कैयूमर्स	1290 ई.

कुतुबुद्दीन ऐबक (1206 - 1210 ई.)
[Kutubuddin Aibak (1206-1210 A.D.)]

- कुतुबुद्दीन ऐबक को भारत में तुर्की राज्य का संस्थापक माना जाता है। वह भारत में स्थापित तुर्क साम्राज्य का प्रथम शासक था।
- शासक बनने के बाद ऐबक ने सुल्तान की उपाधि ग्रहण नहीं की, न उसने अपने नाम का खुतबा पढ़वाया और न ही अपने नाम के सिक्के चलाए बल्कि वह केवल **'मलिक'** और **'सिपहसालार'** की पदवियों से ही खुश रहा।
- कुतुबुद्दीन ऐबक को सन् 1208 में दासता से मुक्ति मिली। उसने लाहौर से ही शासन का संचालन किया तथा लाहौर ही उसकी राजधानी थी।
- कुतुबुद्दीन ऐबक एक वीर एवं उदार हृदय वाला सुल्तान था, वह लाखों में दान दिया करता था। अपनी असीम उदारता के कारण उसे **'लाखबख्श'** कहा गया।
- ऐबक ने **हसन निजामी** और **फक्र-ए-मुदब्बिर** जैसे विद्वानों को संरक्षण दिया तथा प्रसिद्ध सूफी संत **ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी** के नाम पर दिल्ली में कुतुबमीनार की नींव रखी जिसे इल्तुतमिश ने पूरा करवाया।
- उसने दिल्ली में ही **'कुव्वत-उल-इस्लाम'** मस्जिद का निर्माण करवाया जिसे भारत में इस्लामी पद्धति पर निर्मित प्रथम मस्जिद माना जाता है तथा अजमेर स्थित **'अढ़ाई दिन का झोपड़ा'** नामक मस्जिद का भी निर्माण उसी ने करवाया।
- सन् 1210 ई. में लाहौर में चौगान (पोलो) खेलते समय घोड़े से अचानक गिर जाने के कारण ऐबक की अकस्मात् ही मृत्यु हो गई।
- कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु के बाद उसका अयोग्य एवं अनुभवहीन पुत्र आरामशाह शासक बना जिसके कारण अमीरों ने स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। बंगाल, अलीमर्दान खाँ के अधीन स्वतंत्र हो गया। ऐसी परिस्थितियों में प्रमुख तुर्क, अमीर अली इस्माइल ने ऐबक के दामाद इल्तुतमिश को सुल्तान बनने के लिये आमंत्रित किया।
- इल्तुतमिश ने 1210 ई. में आरामशाह को पराजित किया और स्वयं सल्तनत का सुल्तान बना।

शम्सुद्दीन इल्तुतमिश (1210 - 1236 ई.)
[Shamsuddin Iltutmish (1210-1236 A.D.)]

इल्तुतमिश दिल्ली सल्तनत के आरंभ के इतिहास में सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। जिन विषम परिस्थितियों में उसने राज्य प्राप्त किया, उन्हें अपनी योग्यता, दूरदर्शिता और प्रतिभा के बल पर उसे समाप्त किया और अपने साम्राज्य को मज़बूत किया। इसीलिये उसे दिल्ली सल्तनत का वास्तविक संस्थापक कहा जाता है। इल्तुतमिश, इल्बरी जनजाति का तुर्क था। वह ग्वालियर और बुलंदशहर का सूबेदार था। 1206 में ऐबक ने उसे बदायूँ का सूबेदार बनाया। ऐबक की मृत्यु के बाद दिल्ली के कुलीन तुर्कों ने आरामशाह की अयोग्यता के कारण इल्तुतमिश को सुल्तान बनने के लिये आमन्त्रित किया। इल्तुतमिश ने आरामशाह को पराजित कर तुर्क सत्ता अपने हाथ में ले ली।

इल्तुतमिश ने लाहौर की बजाय दिल्ली को मुख्यालय बनाया। इल्तुतमिश ने 26 वर्ष तक शासन किया जिसे तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है–

16 क्षेत्रीय शक्तियाँ : 13वीं–15वीं सदी
(Regional Powers : 13th-15th Century)

मध्य एशियाई आक्रमणकारी तैमूर लंग ने 1398 ई. में दिल्ली सल्तनत पर आक्रमण किया। उसके आक्रमण ने जहाँ एक ओर तुगलक राजवंश का पतन कर दिया, वहीं दूसरी ओर दिल्ली सल्तनत के विघटन की प्रक्रिया तीव्र कर दी। तुगलक साम्राज्य के विघटन के पश्चात् केंद्रीय सत्ता लुप्त हो गई और इस विघटित साम्राज्य के अवशेषों पर ही कई क्षेत्रीय शक्तियों का उद्भव हुआ। इन क्षेत्रीय शक्तियों में उत्तरी भारत में **मालवा, जौनपुर, मेवाड़, कश्मीर, गुजरात, बंगाल, उड़ीसा व असम** प्रमुख थे जबकि दक्षिण भारत में **विजयनगर और बहमनी** प्रमुख राज्य थे।

नोट: विजयनगर एवं बहमनी साम्राज्य के बारे में विस्तृत जानकारी अध्याय–17 में दी गई है।

इन क्षेत्रीय शक्तियों की स्वतंत्रता तब तक ही (लगभग 200 वर्ष) बनी रही जब तक कि मध्यकालीन भारतीय इतिहास में मुगलों का आगमन नहीं हुआ था। इस समय क्षेत्रीय शक्तियों की सबसे बड़ी खामी थी कि ये आपस में निरंतर एक–दूसरे के साथ संघर्षरत थे, जैसे– विजयनगर और बहमनी साम्राज्य, मालवा एवं जौनपुर तथा बंगाल का राज्य आदि। यही कारण रहा कि इन राज्यों द्वारा कभी भी विस्तृत साम्राज्य की स्थापना नहीं की जा सकी।

मालवा *(Malwa)*

मालवा का राज्य नर्मदा तथा ताप्ती नदियों के मध्य अवस्थित था। इस प्रांत को सन् 1305 में अलाउद्दीन खिलजी ने दिल्ली सल्तनत में शामिल किया था, परंतु तुगलक वंश के पतन के दौरान तुगलक गवर्नर **दिलावर खाँ** ने सन् 1401 ई. में स्वतंत्र **मालवा** साम्राज्य की स्थापना की।

मालवा आर्थिक और सांस्कृतिक दोनों दृष्टि से समृद्ध राज्य था। पठारी क्षेत्र होने के कारण इसका सामरिक महत्त्व भी था। यहाँ के सुल्तानों ने राजधानी **मांडू** में अनेक भव्य एवं सुंदर महलों, मस्जिदों एवं मकबरों का निर्माण करवाया था। गुजरात एवं जौनपुर मालवा के प्रमुख प्रतिद्वंद्वी राज्य थे जिनमें आपस में हमेशा प्रतिस्पर्द्धा होती थी।

- **दिलावर खाँ** का वास्तविक नाम हुसैन था। उसने अपनी पुत्री का विवाह खानदेश के शासक फारुकी के बेटे अली शेर खिलजी के साथ किया तथा गुजरात के शासक **मुजफ्फर शाह** के साथ मित्रतापूर्ण संबंध बनाए रखते हुए मालवा को आक्रमण से बचाया।
- मालवा का प्रसिद्ध शासक **हुशंगशाह** था। उसने धार के स्थान पर **मांडू** को साम्राज्य की राजधानी बनाया।
- हुशंगशाह एक अत्यंत लोकप्रिय शासक था, उसने बहुसंख्यक हिन्दुओं के प्रति सहिष्णुता की नीति अपनाई तथा अनेक हिन्दुओं को मालवा में बसने के लिये प्रेरित किया।
- हुशंगशाह महान विद्वान और सूफी संत शेख बुरहानुद्दीन का शिष्य था। उसके संरक्षण में अनेक सूफी संत मालवा की ओर आकर्षित हुए। हुशंगशाह ने 1406 ई. में अपनी मृत्यु से पूर्व नर्मदा के किनारे **होशंगाबाद** नगर की स्थापना की।
- सन् 1436 ई. में इसके वंश को समाप्त कर महमूद खिलजी ने मालवा में एक नए खिलजी वंश की स्थापना की। उसने **गुजरात, मेवाड़** और **बहमनी** राज्यों के साथ संघर्ष किया और मालवा को एक शक्तिशाली साम्राज्य बनाया।
- मेवाड़ के साथ राणा कुंभा से हुए युद्धों में दोनों शासकों ने विजय का दावा किया है। राणा कुंभा ने चित्तौड़ में **विजय स्तंभ** बनवाया और महमूद खिलजी ने मांडू में **"सात मंज़िलों वाला स्तंभ"** स्थापित किया।
- महमूद खिलजी ने जैन व्यापारियों को भी संरक्षण दिया तथा मांडू में एक **चिकित्सालय** की स्थापना की जहाँ रोगियों का निःशुल्क इलाज किया जाता था।
- सन् 1531 ई. में गुजरात के शासक **बहादुरशाह** ने महमूद द्वितीय को पराजित कर मालवा को अपने राज्य में मिला लिया।
- अंततः बादशाह अकबर ने 1562 ई. में अब्दुल्ला खाँ के नेतृत्व में मालवा पर विजय हेतु मुगल सेना भेजी। उस समय वहाँ का शासक बाजबहादुर था, जिसे परास्त कर मालवा को अंतिम रूप से मुगल साम्राज्य का हिस्सा बना लिया गया।

मेवाड़ *(Mewar)*

मेवाड़ राज्य, गुहिलौत राजवंश के अधीन एक प्राचीन राज्य था जिसकी राजधानी उदयपुर के निकट नागदा थी। बाद में इसकी राजधानी **चित्तौड़** हो गई, परंतु सन् 1303 ई. में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने मेवाड़ पर अधिकार कर लिया और यह भी सल्तनत का एक प्रांत बन गया एवं इसका नाम **खिज्राबाद** कर दिया गया।

- हम्मीरदेव ने सन् 1314 ई. में मेवाड़ में सिसोदिया वंश की स्थापना की और मुहम्मद बिन तुगलक के समय चित्तौड़ को जीतकर पुनः मेवाड़ की राजधानी बना दिया।
- मोकल का पुत्र **राणा कुंभा** सन् 1433 ई. में मेवाड़ का शासक बना। वह मेवाड़ का योग्य एवं सर्वाधिक शक्तिशाली शासक था। उसने मेवाड़ को एक महत्त्वपूर्ण शक्ति के रूप में स्थापित कर दिया।
- राणा कुंभा को एक महान विजेता माना जाता है। उसने राजस्थान के बूंदी, कोटा, डूँगरपुर, सारंगपुर, नागौर आदि छोटे–छोटे राज्यों को मेवाड़ की अधीनता स्वीकार करने के लिये बाध्य किया।
- मालवा विजय की स्मृति में **राणा कुंभा** ने चित्तौड़ में **कीर्तिस्तंभ (विजय स्तंभ)** की स्थापना करवाई। वह स्वयं एक बड़ा विद्वान था। वह विभिन्न विद्याओं, जैसे– गणित, तर्कशास्त्र, धर्मशास्त्र, साहित्य तथा संगीत में प्रवीण था।

17 विजयनगर एवं बहमनी साम्राज्य
(Vijayanagar And Bahmani Empire)

14वीं शताब्दी के प्रथम चरण या मुहम्मद बिन तुगलक के शासनकाल में लगभग संपूर्ण दक्षिण भारत दिल्ली सल्तनत में शामिल किया जा चुका था। उसने दक्षिणी प्रांतों में मज़बूत सत्ता स्थापित करने के लिये कुछ प्रयास भी किये, जैसे– विजित प्रदेशों को प्रांतों में विभाजित किया, दौलताबाद में नई राजधानी बनाई परंतु सारे प्रयास असफल हो गए और दक्षिण के क्षेत्रों ने विद्रोह कर दिया। इसी विद्रोह के क्रम में दक्षिण भारत में दो नवीन साम्राज्यों का उदय हुआ। विजयनगर एवं बहमनी साम्राज्य। यद्यपि इन दोनों राज्यों के शासकों द्वारा स्थायित्व तथा प्रजा के कल्याण के लिये अनेक सामाजिक एवं सांस्कृतिक उपाय किये गए परंतु दोनों के बीच तब तक आपसी संघर्ष चलता रहा, जब तक कि बहमनी राज्य का विघटन नहीं हो गया। इस प्रकार दक्षिण भारतीय इतिहास में विजयनगर एवं बहमनी साम्राज्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

विजयनगर: राजनीतिक एवं प्रशासनिक स्थिति (Vijayanagar : Political and Administrative Status)

विजयनगर राज्य की स्थापना हरिहर और बुक्का नाम के दो भाइयों के द्वारा 1336 ई. में की गई थी। कहा जाता है कि **हरिहर** और **बुक्का** वारंगल के काकतीय शासक प्रताप रुद्रदेव के पारिवारिक संबंधी या सामंत थे। तुगलकों ने वारंगल पर आक्रमण कर राज्य को नष्ट कर दिया तब दोनों भाई (हरिहर और बुक्का) **कांपिली** अथवा **अनेगोंडी** (वर्तमान कर्नाटक) राज्य में जाकर रहने लगे। एक विद्रोही को शरण देने के कारण कांपिली पर मुहम्मद तुगलक ने आक्रमण कर दिया तथा विजयोपरांत हरिहर और बुक्का को बंदी बना लिया गया। इन दोनों को इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिये विवश किया गया उसके उपरांत इन्हें विद्रोहियों के दमन के लिये दक्षिण भारत भेजा गया, परंतु दोनों भाइयों ने दक्षिण भारत में प्रारंभ हुई तुर्क सत्ता के विरोधी गतिविधियों में योगदान दिया तथा इस्लाम धर्म को त्यागकर शृंगेरी के प्रतिष्ठित गुरु **विद्यारण्य** की प्रेरणा से पुन: हिन्दू धर्म स्वीकार कर तुंगभद्रा नदी के किनारे सामरिक रूप से महत्त्वपूर्ण स्थान को विजयनगर के नाम से बसाया और शासन करने लगे। 1336 ई. में हरिहर विजयनगर का शासक बना। हरिहर और बुक्का द्वारा स्थापित वंश को उनके पिता संगम के नाम पर **संगम वंश** कहा गया।

प्रमुख राजवंश *(Major Dynasty)*

राजवंश	संस्थापक	शासनकाल
संगम वंश	हरिहर एवं बुक्का	1336–1485 ई.
सालुव वंश	नरसिंह सालुव	1485–1505 ई.
तुलुव वंश	वीर नरसिंह	1505–1570 ई.
अरावीडु वंश	तिरुमल्ल	1570–1652 ई.

संगम वंश (1336-1485 ई.) *(Sangama Dynasty)*

हरिहर प्रथम (1336-1356 ई.)

विजयनगर साम्राज्य के संस्थापकों में से एक, हरिहर प्रथम सन् 1336 ई. में शासक बना। उसने प्रारंभ में अनेगोण्डी को अपनी राजधानी बनाया परंतु बाद में साम्राज्य की राजधानी विजयनगर स्थानांतरित कर दी। उसने सन् 1346 ई. में होयसल साम्राज्य को जीत कर उसे विजयनगर में शामिल कर लिया। सन् 1352–53 में मदुरै पर भी विजय प्राप्त कर ली।

बुक्का प्रथम (1356-1377 ई.)

हरिहर प्रथम की मृत्यु के बाद उसका भाई बुक्का प्रथम विजयनगर का शासक बना। यद्यपि वह हरिहर प्रथम के साथ 1336 से ही **संयुक्त शासक** रूप से शासन कर रहा था।

- उसने सन् 1377 ई. में मदुरै के अस्तित्व को समाप्त कर विजयनगर साम्राज्य का विस्तार कर अपनी चरम सीमा तक पहुँचा दिया अब इसमें तमिल व चेर के प्रदेश भी सम्मिलित थे।
- इसके समय ही विजयनगर एवं बहमनी के मध्य संघर्ष की शुरुआत हुई। उसने बहमनी सुल्तान मुहम्मदशाह प्रथम से युद्ध किया और समझौता किया।

18 भक्ति एवं सूफी आंदोलन
(Bhakti and Sufi Movement)

मध्यकालीन भारत के प्रारंभ में संतों तथा सूफियों के प्रयासों से हिन्दू एवं इस्लाम धर्म में नवीन शक्ति एवं गतिशीलता का संचार हुआ, इसे भक्ति एवं सूफी आंदोलन के नाम से जाना जाता है। भक्ति आंदोलन का प्रारंभ उपनिषदों, भगवद्गीता, पुराण आदि धार्मिक ग्रंथों के आधार पर हुआ, जबकि सूफी आंदोलन इस्लाम की कट्टरता के विरुद्ध तथा तुर्की शासन में व्याप्त घुटन एवं उदासी को दूर करने के लिये हुआ।

भक्ति एवं सूफी आंदोलन का मुख्य उद्देश्य समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करना तथा प्रेम और उदारता का संदेश देना था। इन आंदोलनों की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि इन्हें न तो राजकीय संरक्षण मिला और न ही राजनीतिक उतार-चढ़ाव से इनमें कोई विचलन आया।

भक्ति आंदोलन (Bhakti Movement)

भक्ति आंदोलन का विकास मुख्यत: दो चरणों में हुआ। पहले चरण की शुरुआत दक्षिण भारत में 8वीं शताब्दी से हुई जो 13वीं शताब्दी तक चला, जबकि दूसरे चरण की शुरुआत 13वीं शताब्दी में हुई और यह 16वीं शताब्दी तक चला। इस चरण का प्रमुख क्षेत्र उत्तरी भारत रहा।

भक्ति आंदोलन के संतों द्वारा हिन्दू धर्म में व्याप्त विसंगतियों के सुधार हेतु काफी प्रयास किये गए। दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन को शुरू करने का श्रेय नयनार और अलवार संतों को प्राप्त है। नयनार, शैव धर्म के अनुयायी थे वहीं अलवार, वैष्णव धर्म के अनुयायी थे। इन नयनार तथा अलवार संतों द्वारा बौद्ध और जैन धर्म का विरोध किया गया तथा भक्ति को ईश्वर प्राप्ति का एकमात्र मार्ग बताया गया। उन्होंने कर्मकांडों और अंधविश्वासों की निंदा की तथा अपने उपदेश जन-समुदाय को स्थानीय भाषा में दिये। उनका यह एक समतावादी आंदोलन था, जिसमें जाति-धर्म तथा ऊँच-नीच का प्रबल विरोध किया गया था। **प्रथम चरण के भक्ति आंदोलन के प्रमुख संत निम्नलिखित थे–**

शंकराचार्य

- शंकराचार्य को भक्ति आंदोलन का प्रथम संत माना जाता है। उनका जन्म **केरल के कलाडी** में 788 ई. में हुआ था।
- इनके दर्शन का आधार वेदांत अथवा उपनिषद् था। उन्होंने भारत में बह्म एवं ज्ञानवाद का प्रसार किया, इसलिये उनके सिद्धांत एवं दर्शन को **अद्वैतवाद** के नाम से जाना जाता है।
- शंकराचार्य ने भारत में धर्म की एकता के लिये तथा पूरे भारत को एक सूत्र में पिरोने के लिये भारत की चारों दिशाओं में चार मठ स्थापित किये। सन् 820 ई. में हिमालय की तलहटी में स्थित **केदारनाथ** में मात्र 32 वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु हो गई।

शंकराचार्य द्वारा स्थापित मठ		
दिशा	**स्थान**	**मठ**
उत्तर	बद्रीनाथ	ज्योतिर्मठ
दक्षिण	शृंगेरी	वेदांत मठ
पूर्व	पुरी	गोवर्धन मठ
पश्चिम	द्वारका	शारदा मठ

रामानुज

- रामानुज 12वीं शताब्दी के प्रमुख संत थे, जिनका जन्म **तमिलनाडु के पेरंबदूर** में हुआ था। वे सगुण धारा के **वैष्णव** संत थे।
- उन्होंने शंकराचार्य के ज्ञानवादी अद्वैत दर्शन के विरोध में **विशिष्टाद्वैतवाद** का दर्शन दिया तथा ज्ञान के स्थान पर भक्ति को महत्ता प्रदान की।
- उन्होंने मनुष्य की समानता पर बल दिया और जाति व्यवस्था की भर्त्सना की और अपने क्रियाकलापों के लिये **काँची** और **श्रीरंगपट्टनम** में मुख्य केंद्र स्थापित किये।

प्रमुख प्रवर्तक एवं उनके संप्रदाय	
प्रवर्तक	**संप्रदाय**
शंकराचार्य	स्मृति संप्रदाय
रामानुजाचार्य	श्री संप्रदाय
मध्वाचार्य	ब्रह्म संप्रदाय
वल्लभाचार्य	रुद्र संप्रदाय
गुरु नानक	सिक्ख संप्रदाय
दादू दयाल	दादू पंथ एवं निपख संप्रदाय
हित हरवंश	राधाबल्लभ संप्रदाय
रामानंद	रामवत संप्रदाय
श्रीचंद (गुरु नानक के पुत्र)	उदासी संप्रदाय
निरंजन	निरंजनी संप्रदाय
संत लाल दास	लाल पंथ
नामदेव	वारकारी संप्रदाय
रामदास बोध	धरकरी संप्रदाय
शंकर देव	एकशरण संप्रदाय
निंबार्क	सनक संप्रदाय
स्वामी हरिदास	सुखी संप्रदाय

19 मुगल साम्राज्य और शेरशाह
(Mughal Empire and Shershah)

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में मुगलों का आगमन एक नवीन युग का परिचायक था। यद्यपि भारत में मुगल वंश का संस्थापक **बाबर** विदेशी था और मंगोल तथा चंगेज खाँ जैसे आक्रमणकारियों का वंशज था, परंतु उसके और उसके वंशज द्वारा एक स्थिर एवं शांतिपूर्ण सत्ता स्थापित की गई तथा उसने लाखों लोगों पर उनकी मर्जी से शासन किया।

सन् 1405 ई. में तैमूरलंग की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी शाहरुख मिर्जा के काल में मंगोल साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। इस राजनीतिक शून्यता को भरने के लिये कई नए राज्यों की स्थापना **ट्रांस-ऑक्सियाना** के क्षेत्रों में हुई, जैसे- **उज़्बेक राज्य, सफवी राज्य** और **मुगल राज्य**। मुगल राज्य की स्थापना उमर शेख मिर्जा के नेतृत्व में हुई, जो फरगना नामक छोटे राज्य के शासक थे। सन् 1494 ई. में एक दुर्घटना में उमर शेख की मृत्यु हो गई। उसके बाद उसका पुत्र बाबर मात्र 11 वर्ष की आयु में ही फरगना का शासक बना। बाबर बड़ा महत्त्वाकांक्षी शासक था। वह फरगना में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के बाद तैमूर की राजधानी समरकन्द को भी जीतना चाहता था और 1496 ई. में समरकन्द पर अधिकार भी कर लिया, परन्तु इस क्रम में उससे फरगना भी हाथ से निकल गया।

उज़्बेक सरदार तथा सफवी वंश के द्वारा बार-बार पराजय ने बाबर को अपने पैतृक सिंहासन को प्राप्त करने के विचार को त्याग कर भारत में अपना भाग्य अजमाने के लिये विवश कर दिया। इसी क्रम में बाबर ने सन् 1504 ई. में काबुल पर अधिकार कर लिया तथा 1507 ई. में पहली बार मिर्ज़ा की जगह **पादशाह** की उपाधि धारण की। बाबर ने जिस समय भारत पर आक्रमण किया, उस समय भारत में बंगाल, मालवा, गुजरात, सिंध, कश्मीर, मेवाड़, खानदेश, विजयनगर, बहमनी की रियासतें एवं दिल्ली स्वतंत्र राज्य थे।

मुगल बादशाह (Mughal Emperor)

बाबर के आक्रमण के समय दिल्ली में लोदी वंश के शासक इब्राहिम लोदी का शासन था। बाबर को भारत आने का निमंत्रण पंजाब के सूबेदार दौलत खाँ लोदी तथा इब्राहिम के चाचा आलम खाँ लोदी ने दिया था। इस निमंत्रण से ही उसे दिल्ली सल्तनत के आंतरिक मतभेद का पता चल चुका था और कहा जाता है कि इसी समय मेवाड़ का शासक **राणा सांगा** के राजदूत ने बाबर को भारत में आक्रमण करने के लिये आमंत्रित किया था।

बाबर (1526-1530 ई.) *[Babar (1526-1530 A.D.)]*

- भारत में मुगल वंश की स्थापना बाबर ने सन् 1526 ई. के पानीपत के युद्ध की विजय के बाद की थी, परन्तु इस विजय से पूर्व वह भारत में चार बार आक्रमण कर चुका था।
- बाबर ने भारत के विरुद्ध प्रथम अभियान 1518-1519 ई. में **यूसुफजाई जाति** के विरुद्ध किया और इस अभियान में बाजौर और भेरा के किले को अपने अधिकार में कर लिया। इस किले को जीतने में उसने सर्वप्रथम बारूद और तोपखाने का प्रयोग किया।

पानीपत का प्रथम युद्ध

पानीपत का प्रथम युद्ध बाबर और इब्राहिम लोदी के मध्य अप्रैल 1526 ई. में हुआ, जिसे बाबर ने अपने कुशल सेनापतित्व और तोपखाना के प्रयोग द्वारा जीत लिया। उसने इब्राहिम लोदी की एक विशाल सेना को पराजित कर भारत में अपनी सत्ता स्थापित की थी। इस युद्ध में बाबर ने उज़्बेकों की युद्ध नीति **'तुलगमा युद्ध पद्धति'** तथा तोपों को सजाने की उस्मानी विधि का प्रयोग किया था।

इस युद्ध की गणना भारतीय इतिहास में एक निर्णायक युद्ध के रूप में होती है। इब्राहिम लोदी युद्ध स्थल में ही मारा गया और बाबर को दिल्ली तथा आगरा तक के क्षेत्र प्राप्त हो गए। साथ ही इब्राहिम लोदी के खजाने पर भी उसका नियंत्रण स्थापित हो गया। इससे बाबर की आर्थिक स्थिति मज़बूत हुई और वह आगे का युद्ध भी जीत सका।

- पानीपत के विजय के उपरांत बाबर ने काबुल के प्रत्येक निवासी को एक-एक चाँदी का सिक्का दान में दिया था, जिसके कारण बाबर को कलंदर कहा जाता है।
- **खानवा का युद्धः** मार्च 1527 ई. को यह युद्ध बाबर और राजपूत सरदार राणा सांगा के मध्य आगरा के खानवा नामक स्थान पर हुआ, जिसमें बाबर ने अपने कुशल नेतृत्व के कारण जीत हासिल की।
- इस युद्ध में बाबर ने जिहाद का नारा दिया तथा मुसलमानों को व्यापारिक कर (तमगा) से मुक्ति दे दी। युद्ध जीतने के बाद उसने गाजी की उपाधि धारण की।
- **चन्देरी का युद्धः** जनवरी 1528 ई. को बाबर और मेदिनी राय के मध्य चन्देरी में युद्ध हुआ, जिसमें मेदिनी राय पराजित हुआ तथा बाबर ने चन्देरी एवं मालवा पर अधिकार कर लिया।
- **घाघरा का युद्धः** मई 1529 में बंगाल एवं बिहार की संयुक्त अफगान सेना और बाबर के मध्य घाघरा का युद्ध हुआ इसमें भी बाबर की विजय हुई।
- घाघरा की विजय के बाद बाबर का भारत में स्थायी रूप से अधिकार हो गया तथा उसका साम्राज्य सिन्धु से लेकर बिहार तक तथा उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में ग्वालियर तक फैल गया।
- 26 दिसम्बर, 1530 ई. में 48 वर्ष की आयु में बाबर की मृत्यु हो गई और उसे आगरा के नूर अफगान बाग में दफना दिया गया, परन्तु बाद में काबुल में उसी के द्वारा चुने गए स्थान पर दफनाया गया।

20 मराठा साम्राज्य (Maratha Empire)

मुगल साम्राज्य के पतन के दौरान ही मराठा शक्ति का उदय हुआ। मराठों के उदय में सर्वप्रथम योगदान क्षेत्र-विशेष की भौगोलिक परिस्थितियों का था। मराठों का मूल निवास-क्षेत्र मराठवाड़ा तीन भागों में विभक्त था। पहला सह्याद्रि पर्वत से दक्षिण तटवर्त्ती भाग दूसरा सह्याद्रि का पर्वतीय क्षेत्र और तीसरा पूर्वी मैदान का पहाड़ी एवं जंगली क्षेत्र। सह्याद्रि के तटवर्ती क्षेत्र को कोंकण एवं पर्वतीय क्षेत्र को मावला के नाम से जाना जाता है। यहाँ कृषि कार्य कठिन था। प्राकृतिक परिस्थितियों के कारण मराठों में साहस, कठोर परिश्रम, आत्मसंयम जैसे गुणों का विकास हुआ। अपनी आजीविका को चलाने के लिये मराठे लूट-पाट का सहारा लेते थे। मराठों में एकता की भावना जगाने में मराठी भाषा का सर्वाधिक योगदान रहा।

मोडी लिपी

मोडी उस लिपि का नाम है, जिसका प्रयोग सन् 1950 ई. तक महाराष्ट्र की प्रमुख भाषा मराठी को लिखने के लिये किया जाता था। मोडी शब्द की उत्पत्ति फारसी के शब्द शिकस्त के अनुवाद से हुई है, जिसका अर्थ होता है 'तोड़ना या मोड़ना' इसे हेमादपंत (या हेमाद्री पंडित) ने महादेव यादव और रामदेव यादव के शासनकाल के दौरान (1260-1309 ई.) विकसित किया था।

भक्ति आन्दोलन के सन्तों जैसे ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम और रामदास की शिक्षाओं ने मराठा राज्य के उदय में सहयोग दिया। ये सन्त जाति प्रथा का विरोध करते थे और स्थानीय मराठी भाषा में उपदेश देते थे। शिवाजी के गुरु **रामदास** ने महाराष्ट्र धर्म को प्रचारित किया।

दक्षिण की राजनीतिक स्थितियों ने भी मराठों के उत्थान में सहयोग दिया। बहमनी राज्य के विखण्डन तक मराठे अनुभवी लड़ाकू जाति के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुके

थे। सर्वप्रथम मुगलों के विरुद्ध संघर्ष में अहमदनगर के प्रधानमंत्री मलिक अम्बर ने मराठों का सहयोग प्राप्त किया तथा मराठों को अपनी सेना में शामिल किया। सर्वप्रथम शिवाजी के पिता शाहजी भोंसले अहमदनगर की सेना में शामिल हुए फिर वह बीजापुर के सूबेदार हो गए। 1620 ई. में शाहजी जहाँगीर की सेवा में चले गए। इस प्रकार जहाँगीर के काल में मराठे पहली बार मुगलों की सेवा में आए। मुगल बादशाह शाहजहाँ ने शाहजी को 5000 का मनसब प्रदान किया, परन्तु शीघ्र ही शाहजी ने मुगलों का साथ छोड़ दिया और पुनः अहमदनगर आ गए। 23 जनवरी 1664 ई. में शाहजी की मृत्यु हो गई।

उदय के कारण (Cause of Rise)

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में मराठा साम्राज्य का उदय कोई एक घटना नहीं, बल्कि यह विभिन्न कारकों का सम्मिलित प्रभाव था। उन कारकों में जहाँ मराठा क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति, यहाँ के भक्ति आंदोलन तथा औरंगजेब की नीतियों का योगदान रहा, वहीं शिवाजी के चमत्कारिक व्यक्तित्व ने भी उनके उदय में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

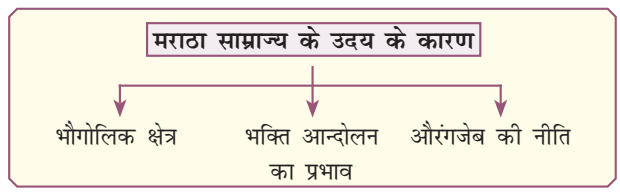

भौगोलिक क्षेत्र *(Geographical Region)*

एम.जी. रानाडे ने अपनी पुस्तक **'द राइज़ ऑफ मराठा पॉवर'** (The rise of Maratha power) में मराठवाड़ा के ऊबड़-खाबड़ भौगोलिक क्षेत्र को उनके उदय का प्रधान कारण माना है।

भक्ति आन्दोलन का प्रभाव *(Influence of Bhakti Movement)*

14वीं शताब्दी के भक्ति आन्दोलन की मराठों के उदय में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। मराठा सन्तों ने एक ही भाषा में अपने उपदेश देकर तथा उच्च और निम्न वर्ग को एक-साथ जोड़कर राष्ट्र की भावना भर दी। शिवाजी के गुरु, समर्थ रामदास ने **दासबोध** नामक एक पुस्तक लिखी, जिसका प्रभाव शिवाजी पर पड़ा।

औरंगजेब की नीति *(Policy of Aurangzeb)*

औरंगजेब की धार्मिक नीति भी मराठों के उदय का एक प्रमुख कारण बनी। उसकी नीतियों से हिन्दुओं में निराशा व्याप्त थी और इस निराशा ने एक अलग राज्य के उदय में सहायता प्रदान की।

शिवाजी (Shivaji)

छत्रपति शिवाजी महाराज या शिवाजी राजे भोंसले भारत के महान योद्धा एवं रणनीतिकार थे। 1627 ई. में शिवाजी का जन्म **शिवनेर** के पहाड़ी दुर्ग में हुआ था। इनकी माता का नाम **जीजाबाई** और पिता **शाहजी भोंसले** थे। शिवाजी भोंसले वंश के थे। **दादाजी कोंडदेव शिवाजी** के संरक्षक थे। शिवाजी के ऊपर समर्थ गुरु रामदास का अत्यधिक प्रभाव था। शिवाजी का विवाह 1640 ई. में **'साईबाई'** के साथ हुआ था। शिवाजी ने अपना प्रथम सैन्य अभियान बीजापुर के आदिलशाही राज्य के विरुद्ध किया। सर्वप्रथम 1643 ई. में शिवाजी ने **सिंहगढ़** का किला जीता और 1646 ई. में शिवाजी ने पूना के पास स्थित तोरण के किले और 1648 ई. में पुरंदर के किले को जीता। इस विजय के उपरान्त बीजापुर के सुल्तान द्वारा शाहजी बंदी बना लिये गए थे।

खंड C

आधुनिक भारत

(बिहार के विशेष संदर्भ सहित)

21 यूरोपीय कंपनियों का भारत आगमन
(Arrival of European Companies in India)

प्राचीन काल में यूनानियों के भारत आगमन के साथ ही भारत और यूरोप के मध्य व्यापारिक संबंध स्थापित हुए। पूर्व मध्यकाल में एशिया और यूरोप के बीच व्यापार अरब देशों के व्यापारियों की मध्यस्थता से होता था। यह व्यापार स्थल मार्ग से होता था, परंतु **1453 ई.** में **तुर्की साम्राज्य** का **कुस्तुनतुनिया** पर अधिकार हो जाने के उपरांत स्थलमार्ग से व्यापार अवरुद्ध हो गया। परिणामत: वैकल्पिक मार्ग के रूप में यूरोप के व्यापारी सुरक्षित समुद्री मार्ग की तलाश करने लगे। इसी क्रम में पुर्तगाल निवासी **वास्कोडिगामा** ने **केप ऑफ गुड होप** की यात्रा करते हुए भारत के नए समुद्री मार्ग की खोज की और जल्द ही भारत का समुद्री व्यापार जो अरब व्यापारियों के हाथों में था, उसे शक्ति के बल पर पुर्तगालियों ने अपने हाथ में ले लिया। 15**वीं शताब्दी** के उत्तरार्द्ध एवं **17वीं शताब्दी** के पूर्वार्द्ध के दौरान भारत में व्यापार के प्रारंभिक उद्देश्यों से प्रवेश करने वाली यूरोपीय कंपनियों ने यहाँ की राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति को लगभग **350** वर्षों तक प्रभावित किया। इन विदेशी शक्तियों में **पुर्तगाली** प्रथम थे। इसके पश्चात् क्रमश: **डच, अंग्रेज़, डेनिश** तथा **फ्राँसीसी** आए।

भारत में पुर्तगालियों का आगमन
(Arrival of Portuguese in India)

सर्वप्रथम पुर्तगाली व्यापारी **वास्कोडिगामा ने** मई 1498 को भारत के पश्चिमी तट पर अवस्थित बंदरगाह **कालीकट** पहुँचकर भारत के लिये नए समुद्री मार्ग की खोज की। वास्कोडिगामा का स्वागत कालीकट के तत्कालीन शासक **जमोरिन** (यह कालीकट के शासक की उपाधि थी) द्वारा किया गया। लेकिन तत्कालीन भारतीय व्यापार पर अधिकार रखने वाले अरब व्यापारियों ने पुर्तगालियों का विरोध किया। भारत में द्वितीय पुर्तगाली अभियान **पेड्रो अल्वारेज कैब्राल** के नेतृत्व में 1500 ई. में आया। प्रथम पुर्तगाली फैक्ट्री की स्थापना 1503 ई. में कोचीन में की गई तथा द्वितीय फैक्ट्री की स्थापना 1505 ई. में **कन्नूर** में की गई। इस प्रकार 15-16वीं सदी में पुर्तगालियों ने कालीकट, गोवा, दमन, दीव एवं हुगली के बंदरगाहों पर भी अपनी व्यापारिक कोठियाँ स्थापित कर ली।

पुर्तगालियों का व्यापारिक घटनाक्रम

- **1498 ई.** वास्कोडिगामा ने कालीकट तक की यात्रा की।
- **1503 ई.** पुर्तगालियों ने भारत में अपनी पहली फैक्ट्री की स्थापना **कोचीन** में की।
- **1505 ई.** पुर्तगालियों ने भारत में दूसरी फैक्ट्री कन्नूर में स्थापित की। **फ्राँसिस्को द अल्मीडा** को भारतीय क्षेत्र का प्रथम गवर्नर बनाया गया। पुर्तगालियों को मज़बूत समुद्री शक्ति के रूप में स्थापित करने के लिये उसने '**ब्लू वाटर पॉलिसी**' का सिद्धांत दिया।
- **1509 ई.** अल्मीडा ने गुजरात, तुर्की एवं मिस्र के संयुक्त बेड़े को पराजित किया।
- **1510 ई. अल्फांसो-डी-अल्बुकर्क** 1509 ई. में वायसराय बना। अल्बुकर्क ने बीजापुर के सुल्तान को पराजित कर गोवा पर 1510 ई. में अधिकार कर लिया।
- **1511 ई.** पुर्तगालियों ने मलाया द्वीप में स्थित मलक्का पर अधिकार कर लिया।
- **1530 ई.** पुर्तगालियों ने गोवा को अपने भारतीय राज्य की औपचारिक राजधानी बनाई।

आरंभिक वर्षों में पुर्तगालियों का व्यापार पर एकाधिकार रहा। उन्होंने व्यापार के साथ शक्ति का भी प्रयोग किया, साथ ही एक '**कॉर्ट्ज-आर्मेडा काफिला पद्धति**' (Cortes-Armada Caravan System) के माध्यम से समुद्री व्यापार पर नियंत्रण कायम किया। फलस्वरूप समकालीन मुगल जहाज़रानी के लिये खतरा पैदा करके मुगल बादशाहों से व्यापार संबंधी छूट प्राप्त की।

यूरोपीय कंपनियाँ व उनकी स्थापना वर्ष

कंपनी	स्थापना वर्ष
एस्तादो द इंडिया (पुर्तगाली कंपनी)	1505
ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी	1600
वेरिंगिदे ओस्त इंडिशे कंपनी (डच ईस्ट इंडिया कंपनी)	1602
डेनिस ईस्ट इंडिया कंपनी	1616
कंपने देस इंदेस ओरियंतलेस (फ्राँसीसी कंपनी)	1664
स्वीडिश ईस्ट इंडिया कंपनी	1731

पुर्तगाली समुद्री डकैती और लूटपाट में भी पीछे नहीं रहे। अमानवीय अत्याचार करने और अव्यवस्था फैलाने में भी उनका हाथ रहा। उन्होंने कट्टरता के द्वारा भारतीय समाज का ईसाईकरण करने का भी प्रयास किया। फलत: विरोध का भी सामना करना पड़ा। भारत में **तंबाकू की खेती, जहाज़ निर्माण तथा प्रिंटिंग प्रेस** की शुरुआत पुर्तगालियों के आगमन के पश्चात् हुई। पुर्तगालियों ने ही 1556 ई. में गोवा में **प्रथम प्रिंटिंग प्रेस** की स्थापना की। भारत में **फलों** की कई प्रजातियों को लाने का श्रेय भी पुर्तगालियों को जाता है। पुर्तगालियों की दोषपूर्ण नीति के कारण 18वीं सदी की शुरुआत तक भारतीय व्यापार के क्षेत्र से पुर्तगालियों का प्रभाव कम हो गया तथा वे भारतीय व्यापार से बाहर हो गए। चूँकि थॉमस बैस्ट नामक अंग्रेज अधिकारी ने पुर्तगालियों को 'सौली' नामक स्थान पर पराजित किया था। हालाँकि **गोवा, दमन और दीव** में 1961 ई. तक पुर्तगालियों का अधिकार बना रहा।

22 ब्रिटिशकालीन प्रमुख अधिनियम तथा प्रशासक
(Important Acts of British Period and Administrator)

ब्रिटेन द्वारा भारत पर अपने औपनिवेशिक शासन के दौरान अनेक अधिनियमों का सहारा लेना पड़ा, जिनका प्रमुख उद्देश्य ब्रिटिश शासन को स्थिरता प्रदान करना था। ये अधिनियम एक समय अंतराल पर अलग-अलग प्रशासकों द्वारा लागू किये गए।

ब्रिटिशकालीन महत्त्वपूर्ण अधिनियम (Important Acts of British Period)

1765 ई. (इलाहाबाद की दूसरी संधि) में मुगल सम्राट शाह आलम द्वितीय के एक फरमान से ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त हो गई और उसके बदले कंपनी ने **26 लाख रुपए** वार्षिक मुगल सम्राट को देना स्वीकार किया। इसका श्रेय **लॉर्ड क्लाइव** को प्राप्त है। बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा में कंपनी द्वारा दीवानी ग्रहण करने के पश्चात् इन क्षेत्रों में प्रशासनिक अव्यवस्था तथा अराजकता का वातावरण व्याप्त हो गया। कंपनी के कर्मचारी जनता का अधिकाधिक शोषण करने लगे क्योंकि वे शीघ्र ही धनाढ्य बनकर इंग्लैंड वापस जाना चाहते थे। विस्तृत प्रदेश पर कब्ज़ा, सेना का रख-रखाव तथा विभिन्न युद्धों से कंपनी पर आर्थिक बोझ बढ़ जाने के कारण वह अपने कर्मचारियों के वेतन का भुगतान करने में भी असमर्थता का अनुभव कर रही थी। 1772 ई. में तो आर्थिक अस्थिरता बहुत बढ़ गई थी, इसीलिये ब्रिटिश संसद ने कंपनी के विविध कार्यों की जाँच के लिये एक प्रवर समिति तथा एक गुप्त समिति गठित की। 1773 ई. में गुप्त समिति ने अपना अंतिम प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। इस प्रतिवेदन के फलस्वरूप **लॉर्ड नॉर्थ** ने 18 मई को ब्रिटिश संसद में अपना प्रसिद्ध ऐतिहासिक विधेयक प्रस्तुत किया, जो बाद में **रेग्यूलेटिंग एक्ट** कहलाया।

रेग्यूलेटिंग एक्ट, 1773 *(The Regulating Act, 1773)*

भारत के संवैधानिक इतिहास में 1773 ई. का रेग्यूलेटिंग एक्ट, जो गवर्नर जनरल वॉरेन हेस्टिंग्स के काल में पारित हुआ था, विशेष महत्त्व रखता है। यह अधिनियम भारत में कंपनी के प्रशासन पर ब्रिटिश संसदीय नियंत्रणों के प्रयासों की शुरुआत थी। अब कंपनी के शासनाधीन क्षेत्रों का प्रशासन कंपनी के व्यापारियों का निजी मामला नहीं रहा। 1773 ई. के रेग्यूलेटिंग एक्ट से भारत में कंपनी के शासन के लिये पहली बार लिखित संविधान (Written Constitution) प्रस्तुत किया गया। रेग्यूलेटिंग एक्ट के प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं-

- इस अधिनियम (एक्ट) के द्वारा 1773 ई. में कलकत्ता में एक **उच्चतम न्यायालय** (Supreme Court) की स्थापना की गई जिसमें एक मुख्य न्यायाधीश **सर एलिजाह इंपे** (Elijah Impey) तथा तीन अवर न्यायाधीशों **चेंबर्स, लिमैस्टर** एवं **हाइड** की नियुक्ति की गई। उच्चतम न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील लंदन स्थित प्रिवी काउंसिल (Privy Council) में की जा सकती थी। इस उच्चतम न्यायालय को प्राथमिक तथा पुनर्विचार संबंधी अधिकार दिये गए थे।
- मद्रास एवं बंबई प्रेसीडेंसियों को कलकत्ता प्रेसीडेंसी के अधीन कर दिया गया जिसका प्रमुख गवर्नर जनरल होता था। बंगाल में एक प्रशासक मंडल बनाया गया, जिसमें गवर्नर जनरल (अध्यक्ष के रूप में) तथा चार सदस्य नियुक्त किये गए। इन सदस्यों को गवर्नर या पार्षद कहा जाता था। इस मंडल में बहुमत से निर्णय होते थे, परंतु मत बराबर होने की स्थिति में अध्यक्ष अपना निर्णायक मत देता था।
- प्रशासक मंडल के सदस्यों का निर्वाचन पाँच वर्षों के लिये किया जाता था तथा ये केवल कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स की सिफारिश पर ब्रिटिश क्राउन द्वारा ही हटाए जा सकते थे।
- 1773 ई. के रेग्यूलेटिंग एक्ट के अनुसार, कंपनी के कर्मचारी किसी भी प्रकार का उपहार, दान या पारितोषिक ग्रहण नहीं कर सकते थे।
- इस एक्ट द्वारा गवर्नर जनरल का वेतन 25 हज़ार पौंड, गवर्नर का 10 हज़ार पौंड, उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का 8 हज़ार पौंड तथा अवर न्यायाधीश का वेतन 6 हज़ार पौंड वार्षिक निश्चित कर दिया गया।
- किसी भी यूरोपीय शक्ति द्वारा सुदूर सभ्य लोगों के देश में प्रशासन करने का यह प्रथम प्रयत्न था। इस प्रकार रेग्यूलेटिंग एक्ट के माध्यम से एक ईमानदार शासन का आधारभूत सिद्धांत निर्धारित किया गया तथा इस नियामक अधिनियम के द्वारा ब्रिटिश भारत के लिये एक लिखित संविधान प्रणाली का सूत्रपात हुआ। वास्तव में इस अधिनियम के माध्यम से 'एक व्यक्ति अथवा कुछ व्यक्तियों के स्थान पर एक संस्था के शासन' की स्थापना हो गई।

पिट्स इंडिया एक्ट, 1784 *(The Pitt's India Act, 1784)*

पिट्स इंडिया एक्ट से पहले फॉक्स ने इंडिया बिल प्रस्तुत किया था, जिसके अनुसार कंपनी की राजनीतिक एवं सैनिक शक्ति 7 आयुक्तों के बोर्ड को सौंपी जानी थी तथा उनके अधीनस्थ **9 उपनिदेशकों** को व्यापारिक कार्य दिये जाने थे। यह बिल हाउस ऑफ कॉमंस में पारित हो गया परंतु हाउस ऑफ लॉर्ड्स में पारित नहीं हो सका। परिणामस्वरूप लॉर्ड नॉर्थ और फॉक्स की मिली-जुली सरकार को त्याग-पत्र देना पड़ा। यह पहला और अंतिम अवसर था जब किसी भारतीय मुद्दे पर ब्रिटिश सरकार गिर गई। कंपनी पर अपने प्रभाव को मज़बूत करने एवं 1773 के रेग्यूलेटिंग एक्ट में व्याप्त खामियों को दूर करने के उद्देश्य से ब्रिटिश संसद ने 1784 ई. में पिट्स इंडिया एक्ट पारित किया।

इस एक्ट के माध्यम से छह सदस्यीय **नियंत्रण बोर्ड** (Board of Control) की व्यवस्था की गई। इस नियंत्रण बोर्ड को भारतीय प्रशासन के संबंध में निरीक्षण, निर्देशन तथा नियंत्रण संबंधी व्यापक अधिकार

23 ब्रिटिश कंपनी द्वारा भारत विजय
(India Conquest by British Company)

भारत में व्यापार करने के उद्देश्य से 17वीं शताब्दी में ईस्ट इंडिया कंपनी ने प्रवेश किया। कंपनी को भारतीय व्यापार पर एकाधिकार स्थापित करने के लिये अन्य यूरोपीय कंपनियों तथा भारतीय राज्यों-बंगाल, मैसूर, मराठा, सिंध, पंजाब और अवध के विरोध का सामना करना पड़ा, किंतु भारतीय राज्यों के आपसी मतभेद और षड्यंत्रों ने ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी को उनके ऊपर अपना वर्चस्व स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान एवं अवसर प्रदान किया।

परवर्ती मुगल शासक (Later Mughal Rulers)

औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके बेटों में उत्तराधिकार के लिये युद्ध हुआ। मुअज्जम और आजम के बीच हुए एक युद्ध में आजम को हराकर मुअज्जम **'बहादुरशाह प्रथम'** की उपाधि के साथ दिल्ली की गद्दी पर बैठा।

- **बहादुरशाह प्रथम (1707-12 ई.):** बहादुरशाह ने मराठों के प्रति मैत्रीपूर्ण व्यवहार करते हुए शाहू को आज़ाद कर दिया। उसने **जजिया** को बंद करवा दिया। सिक्ख नेता **बंदाबहादुर** के विरुद्ध एक अभियान में उसकी मृत्यु हो गई। खफी खाँ ने उसे **शाहे बेखबर** कहा।
- **जहाँदारशाह (1712-13 ई.):** जहाँदारशाह को बादशाह बनवाने में शक्तिशाली अमीर जुल्फिकार खाँ (इसे **किंग मेकर** भी कहा जाता है) का हाथ था। जहाँदारशाह ने आमेर के शासक सवाई जयसिंह को 'मिर्जा' तथा मारवाड़ के राजा अजीत सिंह को 'महाराजा' की उपाधि दी। जहाँदारशाह को **'लंपट-मूर्ख'** भी कहा जाता था।
- **फर्रुखसियर (1713-19 ई.):** फर्रुखसियर को सिंहासन सैयद बंधुओं के सहयोग से प्राप्त हुआ। फर्रुखसियर ने निजामुल मुल्क को दक्कन की सूबेदारी दी। 1719 ई. में सैयद बंधुओं ने षड्यंत्र कर इसकी हत्या करवा दी। इसे **घृणित कायर** कहा गया था।

नादिरशाह का आक्रमण

नादिरशाह (ईरान का नेपोलियन) फारस का शासक था। इसने 1739 ई. में भारत पर आक्रमण किया। सर्वप्रथम **फरवरी 1739** में पंजाब पर आक्रमण किया। नादिरशाह और मुहम्मदशाह के बीच प्रसिद्ध **करनाल का युद्ध** फरवरी 1739 में हुआ। इसमें नादिरशाह की सेना मुगलों के मुकाबले छोटी थी, पर अपने बारूदी अस्त्रों के कारण फारसी सेना जीत गई। मार्च 1739 में **दिल्ली** पर नादिरशाह का अधिकार हो गया। नादिरशाह दिल्ली में 57 दिनों तक रुका तथा वापस जाते समय अपने साथ **तख्त-ए-ताऊस, कोहिनूर हीरा** तथा **खज़ाना ले गया।** मुगल बादशाह ने अपनी पुत्री का विवाह नादिरशाह के पुत्र से कर दिया। इसके अतिरिक्त कश्मीर तथा सिंधु नदी के पश्चिमी प्रदेश भी नादिरशाह को मिल गए। नादिरशाह को जो संपदा भारत से मिली, वो करीब 70 करोड़ रुपए की थी।

- **मुहम्मदशाह (1719-1748 ई.):** इसके विलासी आचरण के कारण इसे रंगीला कहा जाता था। मुहम्मदशाह का मूल नाम **रौशन अख्तर** था। इसी के शासनकाल में नादिरशाह का (1739 में) तथा अहमदशाह अब्दाली (1748 में) का आक्रमण हुआ।

अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण

हिंदुस्तान पर अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण ऐसे समय में हुआ, जब मुगल साम्राज्य अपने पतन की ओर बढ़ रहा था। नादिरशाह का वध 1747 ई. में किये जाने के बाद अहमदशाह अब्दाली कंधार का स्वतंत्र शासक बन बैठा। **अहमदशाह अब्दाली** ने हिंदुस्तान के विरुद्ध सात आक्रमण किये। मुख्य रूप से इन आक्रमणों का उद्देश्य भारत के धन को लूटना था। 1748 ई. में इसका प्रथम आक्रमण **पंजाब** पर हुआ, जो असफल रहा। 1749 ई. में अपने दूसरे आक्रमण में पंजाब के गवर्नर मुईनुलमुल्क को परास्त किया। जनवरी 1757 ई. में वह **दिल्ली** में प्रवेश कर एक माह तक यहाँ रहा और उसने **मथुरा** तथा **आगरा** में लूटमार की। जाते समय अब्दाली ने आलमगीर द्वितीय को सम्राट, इमादुलमुल्क को वज़ीर एवं रुहेला सरदार नजीबुद्दौला को साम्राज्य का मीर बक्शी और अपना एजेंट नियुक्त किया।

- **अहमदशाह (1748-1754 ई.):** अवध का सूबेदार **सफदरजंग** इसका वजीर था। इसके समय अब्दाली ने भारत पर सर्वाधिक आक्रमण किये।
- **शाहआलम द्वितीय (1759-1806 ई.):** बक्सर का युद्ध हारने के बाद अंग्रेज़ों से इलाहाबाद की संधि (1765 ई.) की और पेंशनभोगी बनकर रह गया। 1772 ई. में मराठा सरदार महादजी सिंधिया ने शाहआलम को एक बार फिर दिल्ली के तख्त पर बैठा दिया। इसी के शासनकाल में पानीपत का तीसरा युद्ध (1761 ई.) हुआ। इसी समय 1803 ई. में दिल्ली पर अंग्रेज़ों का नियंत्रण हो गया। 1806 ई. में शाहआलम का पुत्र अकबर द्वितीय की उपाधि के साथ अंग्रेज़ों के संरक्षण में दिल्ली का बादशाह बना। अकबर द्वितीय ने ही राजा राममोहन को 'राजा' की उपाधि दी थी।
- **बहादुरशाह द्वितीय (1837-1862 ई.):** यह अंतिम मुगल सम्राट था तथा 'जफर' के उपनाम से शायरी लिखता था। 1857 ई. के संग्राम के बाद अंग्रेज़ों ने उसे रंगून निर्वासित कर दिया।

18वीं शताब्दी में नवीन स्वायत्त राज्य (The Rise of New Autonomous States in the 18th Century)

बंगाल *(Bengal)*

सभी यूरोपीय शक्तियों में अपनी सर्वोच्चता साबित करने के बाद अंग्रेज़ों ने भारत पर आधिपत्य की शुरुआत बंगाल से की। बंगाल मुगलकाल के सबसे समृद्ध प्रांतों में गिना जाता था। अतः बंगाल पर नियंत्रण स्थापित कर वहाँ की धन-संपत्ति पर नियंत्रण स्थापित करना ब्रिटिश साम्राज्यवादी

24 ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीति
(British Imperialistic Policy)

भारत के प्रमुख राज्यों पर अपनी सत्ता की स्थापना के बाद ब्रिटिश कंपनी ने उसे सुदृढ़ता प्रदान करने हेतु विभिन्न औपनिवेशिक और साम्राज्यवादी नीतियों का सहारा लिया। इन नीतियों के द्वारा ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपने हितों की पूर्ति तो की ही, साथ ही भारतीयों को अपने अधीन कर लिया।

सहायक संधि (Subsidiary Alliance)

सहायक संधि प्रणाली का सर्वप्रथम प्रयोग फ्राँसीसी गवर्नर डूप्ले ने किया था। उसने सैनिक सहायता देने के बदले भारतीय नरेशों से धन लेने की प्रथा शुरू की। अंग्रेज़ों के शासन में भी क्लाइव एवं उसके बाद के गवर्नर जनरलों के द्वारा इस प्रणाली का प्रयोग किया गया। सहायक संधि को व्यावहारिक रूप वेलेजली ने ही दिया।

वेलेजली की सहायक संधि प्रणाली
(Subsidiary alliance system of Wellesley)

वेलेजली का मुख्य उद्देश्य कंपनी को भारत की सर्वोच्च शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करना था और इसमें मुख्य बाधा थी फ्राँसीसियों का बढ़ता प्रभाव, क्योंकि फ्राँस की क्रांति के उपरांत नेपोलियन भारत पर अधिकार करने के प्रयास में था साथ ही टीपू जैसे भारतीय शासक फ्राँसीसियों से गठबंधन कर रहे थे। हालाँकि अवध तथा कर्नाटक के राज्य कंपनी के संरक्षण में थे। कंपनी की आर्थिक स्थिति भी सुधर चुकी थी, फिर भी एक ऐसी राजनीतिक प्रणाली की ज़रूरत थी, जो भारतीय शक्तियों से फ्राँसीसियों को दूर कर सके साथ ही भारतीयों को ब्रिटिश निर्मित वस्तुओं का ग्राहक बना दे। वेलेजली की यह साम्राज्यवादी योजना सहायक संधि के रूप में सामने आई।

सहायक संधि की विशेषताएँ
(Features of subsidiary alliance)

- देशी रियासतें एक ब्रिटिश रेज़िडेंट रखेंगी, जो शासन-प्रबंधन में परामर्श देगा।
- भारतीय रियासतों के आंतरिक शासन में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा।
- वह देशी रियासत, जो संधि को स्वीकार करेगी, कंपनी की स्वीकृति के बिना अपने राज्य में शत्रु राज्य के लोगों को शरण या नौकरी नहीं देगी।
- देशी रियासतों की रक्षा के लिये कंपनी वहाँ अंग्रेज़ी सेना रखेगी, जिसका खर्च उस रियासत को ही उठाना पड़ेगा। सेना के खर्च के लिये नकद धनराशि या राज्य का कुछ इलाका कंपनी को सौंपना होगा।
- देशी रियासत कंपनी की अनुमति के बिना किसी अन्य राज्य से युद्ध, संधि या मैत्री नहीं कर सकेगी अर्थात् वह अपनी विदेश नीति कंपनी को सुपुर्द कर देगी।

सहायक संधि का देशी रियासतों पर प्रभाव
(Impact of subsidiary alliance on princely states)

- ब्रिटिश सैन्य सुरक्षा के कारण भारतीय रजवाड़े विलासी हो गए। उनमें स्वाभिमान एवं उत्तरदायित्व का कोई अंश शेष नहीं रहा। सुरक्षा की चिंता से मुक्त होकर वे तानाशाही करने लगे। जनता दु:खी होकर विद्रोह करने लगी, परंतु उन पर कंपनी का हाथ होने के कारण विद्रोह सफल नहीं हो पाया।
- देशी रियासतों के शासक नाममात्र के शासक रह गए, उनकी सार्वभौम शक्ति समाप्त हो गई।
- हालाँकि अंग्रेज़ रेज़िडेंट को आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप का अधिकार नहीं था, परंतु वे इसका उल्लंघन करते थे और निरंतर हस्तक्षेप करते थे। फलत: शासकों की रुचि शासन में कम हो गई।
- इस तरह की गतिविधि ने भारतीय नरेशों की राष्ट्रीय भावना, साहस, सैन्य संगठन सभी को समाप्त कर दिया। फलत: भारतीय राज्य निरंतर पतनोन्मुख हुए।

सहायक संधि से कंपनी को लाभ
(Benefits to the company from subsidiary alliance)

- कंपनी का भारत में प्रभुत्व स्थापित हो गया। कंपनी की प्रतिष्ठा एवं शक्ति में वृद्धि हुई।
- फ्राँसीसियों का प्रभाव भारतीय नरेशों के राज्यों से पूर्णत: समाप्त हो गया, क्योंकि अब उन्हें वहाँ नौकरी करने का अवसर प्राप्त नहीं हो सकता था।
- इस संधि से कंपनी को भारतीय राज्यों के खर्च पर एक बड़ी सेना मिल गई, जो हर समय किसी भी दशा में लड़ने के लिये तैयार थी।
- अंग्रेज़ों के विरुद्ध भारतीय राज्य कोई संघ या गुट बनाने से वंचित हो गए।
- सामरिक महत्त्व के स्थानों पर कंपनी का नियंत्रण स्थापित हो गया।
- सहायक संधि के माध्यम से कंपनी की साम्राज्यवादी सीमाएँ काफी आगे बढ़ गईं।
- कंपनी को बहुत से **प्रभुसत्तापूर्ण प्रदेश** मिल गए।
- इस प्रकार सहायक संधि कंपनी के लिये अत्यंत लाभप्रद सिद्ध हुई। बहुत से राज्य कंपनी के नियंत्रण में आ गए और अब वह अपने आर्थिक व व्यापारिक हितों को पूरा कर सकती थी।
- राज्यों से सहायक संधियों का क्रम- **हैदराबाद** (1798 व 1800 ई.) → **मैसूर** (1799 ई.) → **तंजौर** (अक्टूबर 1799 ई.) → **अवध** (नवंबर 1801 ई.) → **पेशवा** (दिसंबर 1802 ई.) → बरार के **भोंसले** (दिसंबर 1803 ई.) → **सिंधिया** (फरवरी 1804 ई.)। इसके अतिरिक्त जोधपुर, जयपुर, बूंदी तथा भरतपुर से भी सहायक संधियाँ की गईं।

25 ब्रिटिश शासन का भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव
(Impact of British Rule on Indian Economy)

भारतीय अर्थव्यवस्था 18वीं शताब्दी के आरंभिक दिनों में ग्राम आधारित थी, जो स्वावलंबी एवं स्वशासी होने के साथ-साथ अपनी आवश्यकतानुसार सभी वस्तुओं का उत्पादन करती थी। गाँवों का संबंध केवल राज्य को कर देने से होता था तथा ग्रामीण समाज सदैव की भाँति मंद गति से चलता रहता था, भले ही कोई शासक या वंश परिवर्तित हो गया हो। यूरोपियों ने एशियाई समाज के इस अपरिवर्तनशील रूप के बारे में कहा था कि **यह नश्वर संसार में भी अनश्वर है।** दूसरी ओर, भारत में उत्पादित वस्तुओं की मांग पूरे विश्व में बढ़ने लगी, जैसे- आगरा, लाहौर, मुर्शिदाबाद तथा गुजरात का रेशमी कपड़ा, कश्मीर की ऊनी शॉल, ढाका, अहमदाबाद, मसुलीपट्टनम का सूती कपड़ा, सोने-चांदी के आभूषण, धातु का सामान, हथियार आदि। इसके साथ ही नगरों में भी धीरे-धीरे हस्तशिल्प उद्योग बढ़ने लगे थे। किंतु मुगल साम्राज्य का विघटन होने के कारण आर्थिक-व्यवस्था का भी विघटन होने लगा तथा भारतीय राजाओं के आपसी युद्धों से आर्थिक क्रियाकलापों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों ने इन युद्धों का लाभ उठाकर राजनीति में हस्तक्षेप किया तथा 1757 ई. की **प्लासी विजय** के पश्चात् ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी धीरे-धीरे साम्राज्य की **स्वामिनी** बन गई। यूरोपीय कंपनी यहीं नहीं रुकी बल्कि विजित क्षेत्रों पर अपना नियत्रंण और भी सुदृढ़ करने के लिये आर्थिक-प्रशासनिक नीतियों में समयानुसार परिवर्तन करती रही।

ब्रिटिश आर्थिक नीति (British Economic Policy)

अंग्रेज़ों द्वारा आर्थिक-प्रशासनिक नीतियों को लागू करने के दौरान सदैव साम्राज्यवाद के लक्ष्यों, जैसे- कंपनी के मुनाफे में वृद्धि, विजित क्षेत्रों पर नियंत्रण आदि को ध्यान में रखा गया। अंग्रेज़ों की आर्थिक-प्रशासनिक नीतियों को **जॉन सुलिवन** की पंक्ति द्वारा समझा जा सकता है-

"हमारी प्रणाली एक ऐसे स्पंज के रूप में काम करती है, जो गंगा के किनारों से प्रत्येक अच्छी वस्तु को ले लेती है, फिर टेम्स के किनारों पर निचोड़ देती है।"

भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विभिन्न चरण
(Different stages of British colonialism in India)

उपनिवेशवाद एक ऐसी संरचना होती है, जिसके माध्यम से किसी भी देश का आर्थिक शोषण तथा उत्पीड़न होता है और आर्थिक लाभ के साथ-साथ विदेशी जनसंख्या को विदेशी भूमि पर बसाना भी शामिल होता है। **औद्योगिक क्रांति** ने उपनिवेशवादी-व्यवस्था को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया और भारत भी ब्रिटेन का उपनिवेश इसी व्यवस्था के परिणामस्वरूप बना। भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विभिन्न चरण इंग्लैंड के आर्थिक ढाँचे से प्रभावित होते रहे, इसलिये प्रत्येक चरण में गुणात्मक परिवर्तन होते रहे। इसी परिवर्तन के आधार पर ही भारत में उपनिवेशवाद को तीन प्रमुख चरणों में विभाजित किया गया है-

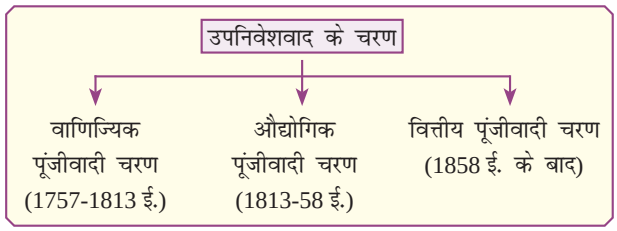

आरंभिक चरण में ब्रिटिश उपनिवेशवाद का मुख्य उद्देश्य भारत से अधिकतम 'भू-राजस्व' की वसूली करने के बहाने उसे लूटना था। आगे चलकर अंग्रेज़ों ने भारत को कच्चे माल के निर्यातक तथा तैयार माल के आयातक के रूप में विकसित किया। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में और 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत स्थित ब्रिटिश उद्योगपतियों द्वारा देश में पूंजी-विनियोग की प्रक्रिया आरंभ की गई। इसे भारतीय श्रमिकों पर शोषण के आरंभ का काल कहा जा सकता है।

वाणिज्यिक पूंजीवादी चरण (1757-1813 ई.)
[Commercial capitalism phase (1757-1813 A.D.)]

उपनिवेशवाद मूलतः एक आर्थिक संबंध है, जो राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक ढाँचे को प्रभावित करता है। 18वीं शताब्दी में भारत एक विशाल कृषि प्रधान देश होने के साथ-साथ औद्योगिक देश भी था, क्योंकि एशिया और यूरोप के बाज़ारों में भारतीय कपड़ों की मांग थी। कृषि एवं उद्योग के संतुलन के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय व्यापार भी भारत के पक्ष में था, क्योंकि भारत का आयात की तुलना में निर्यात बहुत अधिक था, किंतु भारत के इस बढ़ते व्यापार पर यूरोपीय पूंजीपतियों की कुदृष्टि पहले से ही थी। वे भारत आकर भारतीय पूंजीपतियों से प्रतिस्पर्द्धा करने लगे।

वाणिज्यिक पूंजीवादी चरण के प्रमुख लक्ष्य

- इस चरण में कंपनी का प्रमुख लक्ष्य था, भारत से अत्यधिक पूंजी को एकत्रित करना।
- अंग्रेज़ भारत में न्यायिक-व्यवस्था, यातायात, संचार आदि में बिना कोई मौलिक परिवर्तन किये अधिक से अधिक पूंजी अर्जित करना चाहते थे।
- कंपनी अपनी शक्ति बढ़ाने के लिये सैनिक शक्ति, व्यापार केंद्र, मिलों आदि के लिये भारी धनराशि एकत्रित करना चाहती थी।
- भारतीय वस्तुओं को कम-से-कम कीमत पर खरीदना तथा यूरोप में इन वस्तुओं को भारी कीमत पर बेचकर अधिक-से-अधिक लाभ कमाना उनका लक्ष्य था।
- भारतीय व्यापार पर कंपनी का एकाधिकार स्थापित करना।

26 ब्रिटिश शासन का भारतीय समाज पर प्रभाव
(Impact of British Rule on Indian Society)

ब्रिटिश शासन ने भारत की आर्थिक व्यवस्था के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था को भी गंभीर रूप से प्रभावित किया। ब्रिटिश शासन के साथ ही भारतीय समाज में एक नई सामाजिक व्यवस्था सामने आई, जिसका आधार जाति व श्रम न होकर व्यावसायिक उपलब्धियों तथा मुक्त प्रतिस्पर्द्धा पर आधारित नई आर्थिक शक्तियाँ थीं। अंग्रेज़ों ने अपने राज्य विस्तार एवं प्रशासनिक तंत्र के साथ-साथ भारत के संदर्भ में सामाजिक-सांस्कृतिक नीतियों का विकास किया, जो ब्रिटिश औपनिवेशिक हितों के अनुसार समय-समय पर परिवर्तित होती रहीं। ब्रिटिश शासन ने समाज के विभिन्न वर्गों, यथा-ज़मींदार वर्ग, देशी राजे-रजवाड़े, कृषक वर्ग, पूंजीपति वर्ग, मज़दूर वर्ग, नारी वर्ग, आदिवासी वर्ग आदि को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया। साथ ही अंग्रेज़ों के शासन ने भारत की शिक्षा प्रणाली, प्रेस, स्थानीय स्वशासन, लोक-सेवा तथा विदेश नीति को भी गंभीर रूप से प्रभावित किया। भारत में ब्रिटिश शिक्षा नीति ब्रिटिश औपनिवेशिक हितों के अनुकूल परिचालित होती थी, क्योंकि अंग्रेज़ों की शिक्षा नीति का उद्देश्य एक ऐसा वर्ग तैयार करना था, जो ब्रिटिश औद्योगिक बाज़ार का भारत में विस्तार कर सके। ब्रिटिश शासनकाल के दौरान भारत में मानवजनित अकालों की संख्या बढ़ी, किंतु अंग्रेज़ों द्वारा बनाई गई अकाल नीति का ज़ोर केवल उत्पादन तथा कार्य-दिवस पर ही था, श्रमिकों की सुविधाओं पर नहीं। इस काल में लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाने वाला मीडिया, प्रेस, जनसंचार साधन आदि का भी संकुचित विकास हुआ। सिविल सेवाओं में तो भारतीयों को इस परीक्षा के योग्य ही नहीं समझा जाता था, किंतु कुछ राष्ट्रवादी नेताओं के अथक प्रयत्नों से भारतीयों को भी सिविल सेवा की परीक्षा देने का मौका मिला।

ब्रिटिश भारत में शिक्षा का विकास
(Development of Education in British India)

ईस्ट इंडिया कंपनी प्रारंभ में एक विशुद्ध व्यापारिक कंपनी थी, जिसका उद्देश्य व्यापार करके केवल अधिक-से-अधिक लाभ कमाना था। 1764 ई. के बक्सर युद्ध तक कंपनी की कोई शिक्षा नीति नहीं थी, फिर भी ईसाई मिशनरी, जो व्यापारियों के साथ-साथ भारत में आ गए थे, ने भारतीय हिंदू-मुस्लिम समुदाय के सामाजिक और धार्मिक रीति-रिवाज़ों पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। **हिंदुओं और मुसलमानों को संबोधन** शीर्षक से छापी गई पुस्तिका में अंग्रेज़ मिशनरियों द्वारा मुहम्मद साहब को एक **झूठा-पैगंबर** कहा गया तथा हिंदू धर्म को केवल मूर्ति-पूजा, अंधविश्वास तथा अज्ञान का पुंज कहा गया था। इन मिशनरियों का मुख्य उद्देश्य हिंदुओं और मुसलमानों को ईसाई बनाना था। कई विदेशी सहायता-प्राप्त पादरियों ने भारतीय समाज के पिछड़े हुए और कमज़ोर वर्गों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये धर्मार्थ औषधालय, अनाथालय और पाठशालाएँ भी खोलीं, जहाँ नि:शुल्क विद्या के अतिरिक्त भोजन और वस्त्र भी दिये जाते थे। दूसरी ओर, शिक्षा के प्रोत्साहन एवं विकास हेतु व्यक्तिगत स्तर पर भी कुछ प्रयास किये गए। ऐसे प्रयासों के कुछ प्रमुख उदाहरण इस प्रकार हैं:-

- 1781 ई. में **वॉरेन हेस्टिंग्स** द्वारा **कलकत्ता मदरसा** स्थापित किया गया, जिसका उद्देश्य मुस्लिम कानूनों तथा इससे संबंधित अन्य विषयों की शिक्षा देना था।
- 1791 ई. में बनारस के ब्रिटिश रेज़ीडेंट **जोनाथन डंकन** के प्रयासों से हिंदू-विधि एवं दर्शन का अध्ययन करने के लिये **बनारस में संस्कृत कॉलेज** की स्थापना की गई।
- 1800 ई. में लॉर्ड वेलेजली द्वारा असैनिक अधिकारियों की शिक्षा के लिये **फोर्ट विलियम कॉलेज** की स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य कॉलेज में अधिकारियों को विभिन्न भारतीय भाषाओं तथा भारतीय रीति-रिवाज़ों की शिक्षा प्रदान करना था, किंतु 1802 ई. में डायरेक्टरों के आदेश पर यह कॉलेज बंद कर दिया गया।
- 1784 ई. में हेस्टिंग्स के सहयोगी **सर विलियम जोंस** ने **एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल** की स्थापना की, जिसके सदस्य चार्ल्स **विल्किंसन** ने पहली बार मूल **श्रीमद्भगवद्गीता** का संस्कृत से अंग्रेज़ी में अनुवाद किया। 1787 ई. में विल्किंसन द्वारा ही **हितोपदेश** का भी अनुवाद किया गया।
- 1789 ई. में विलियम जोंस ने कालिदास रचित **अभिज्ञान शाकुंतलम्** का अंग्रेज़ी अनुवाद किया तथा **गीतगोविंद** का भी अंग्रेज़ी अनुवाद किया। **मनुस्मृति** वह प्रथम ग्रंथ है, जिसका अनुवाद सबसे पहले संस्कृत से अंग्रेज़ी भाषा में **ए कोड ऑफ जेंटू लॉज** (A code of gentoo laws) के नाम से प्रकाशित हुआ।

राजा राममोहन राय, डेविड हेयर और सर हाइड ईस्ट ने मिलकर कलकत्ता में हिंदू कॉलेज की स्थापना की, जो कालांतर में प्रेसीडेंसी कॉलेज बना।

आंग्ल-प्राच्य भाषा विवाद
(Anglo-oriental language controversy)

1813 ई. के चार्टर एक्ट द्वारा शिक्षा पर एक लाख रुपए खर्च करने के निर्देश के बाद भी 1823 ई. तक कंपनी के अधिकारियों द्वारा कुछ भी खर्च नहीं किया गया। वर्षों तक देश में इस प्रश्न को लेकर काफी वाद-विवाद चलता रहा कि यह खर्च किस दिशा में किया जाए, किंतु 1813 ई. में लोक शिक्षा की सामान्य समिति गठित की गई, जिसमें दस सदस्य शामिल थे। दुर्भाग्य से ये सदस्य पाँच-पाँच की संख्या में दो दलों में बँट गए। एक दल प्राच्य शिक्षा का समर्थक था और दूसरा आंग्ल शिक्षा का समर्थक। प्राच्य भाषा समर्थक दल यह चाहता था कि इस अनुदान का प्रयोग प्राच्य-भाषाओं के विस्तार के लिये किया जाए और दूसरा दल जो अंग्रेज़ी भाषा के द्वारा पश्चिमी विज्ञान तथा साहित्य के प्रसार के लिये इस धन का प्रयोग करना चाहता था।

27 ब्रिटिश शासन के प्रति भारतीयों की प्रतिक्रिया
(Indians Reaction to British Rule)

ब्रिटिश शासन ने भारत की राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन किये तथा ब्रिटिश नीतियों ने भारत को इंग्लैंड का उपनिवेश बना दिया, जिसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध अनेक आंदोलन, विद्रोह तथा सैनिक विप्लव हुए। इन सभी आंदोलनों तथा विद्रोहों के प्रमुख कारणों में भारतीय शासन में विदेशी हस्तक्षेप, प्रशासनिक परिवर्तनों का होना, अर्थव्यवस्था का नष्ट होना, ग्रामीण निर्भरता की समाप्ति तथा अंग्रेज़ों की करों से संबंधित अनेक भू-राजस्व नीतियाँ आदि शामिल थे। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह तथा आंदोलन उनकी बर्बरता तथा निरंकुशता का परिणाम था, जिसने भारतीय जन-मानस को झकझोर दिया। फलतः वह इन अत्याचारों के खिलाफ उठ खड़ा हुआ। इन आंदोलनों को इस प्रकार समझा जा सकता है-

जनजातीय एवं नागरिक विद्रोह
(Tribal and Civilian Revolt)

ब्रिटिश औपनिवेशिक नीतियों के प्रतिक्रियास्वरूप सबसे पहले जनजातीय विद्रोह हुए। जनजातीय लोग भारतीय समाज के हिस्सा थे, किंतु उनके रीति-रिवाज़ व परंपराएँ समाज के अन्य वर्गों से अलग थीं। जब ब्रिटिश साम्राज्य का प्रसार जनजातीय क्षेत्रों में हुआ तो जंगली उत्पादों तथा संसाधनों ने औपनिवेशिक सरकार को अपनी ओर आकर्षित किया, परिणामस्वरूप उनका दोहन आरंभ हुआ। इससे जनजातीय असंतोष को बल मिला। अतः स्पष्ट है कि अंग्रेज़ी शासन के दौरान होने वाले आदिवासी जनजातीय विद्रोहों की पृष्ठभूमि बढ़ते हुए आर्थिक शोषण, प्रशासनिक जटिलताओं एवं सामाजिक असंतोष ने तैयार की। भौगोलिक स्थिति के अनुसार जनजातीय विद्रोहों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है-

जनजातीय एवं नागरिक विद्रोह

पूर्वी भारत तथा बंगाल के विद्रोह
- संन्यासी विद्रोह
- कोल विद्रोह
- संथाल विद्रोह
- अहोम विद्रोह
- खासी विद्रोह
- पागलपंथी विद्रोह
- फराज़ी विद्रोह
- मुंडा विद्रोह

पश्चिम भारत के विद्रोह
- रामोसी विद्रोह
- कच्छ का विद्रोह
- भील विद्रोह
- सूरत का नमक आंदोलन
- गडकरी विद्रोह
- सावंतवादी विद्रोह

दक्षिण भारत के विद्रोह
- विजयनगरम् के राजा का विद्रोह
- वेलूथंपी का विद्रोह
- बुंदेला विद्रोह
- पाड्यगारों का विद्रोह

पूर्वी भारत तथा बंगाल के विद्रोह
(Revolt of Eastern India and Bengal)

संन्यासी विद्रोह (1770-1820, अन्य स्रोतों में 1763-1800)

प्रमुख क्षेत्रः बंगाल

प्रमुख नेताः गिरि संप्रदाय के संन्यासी

- बंगाल में अंग्रेज़ी राज्य स्थापित होने से वहाँ एक नई अर्थव्यवस्था की शुरुआत हुई, जिसके कारण बंगाल के ज़मींदार, कृषक तथा शिल्पी आदि की स्थिति दयनीय हो गई। बंगाल में पड़े (1770 ई. का) भीषण अकाल तथा कंपनी के पदाधिकारियों की कठोरता को लोगों ने विदेशी राज्य की देन समझा।
- 1770 ई. के इस भीषण अकाल ने बंगाल के निवासियों को त्रस्त कर दिया। इससे पूर्व अंग्रेज़ों द्वारा कई प्रतिबंध लगाए गए थे, जिसने बंगाल को जकड़-सा दिया था। तीर्थस्थलों की यात्रा पर लगे प्रतिबंधों से दुखी होकर **शंकराचार्य** के अनुयायी **गिरि संप्रदाय के संन्यासियों** ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह प्रारंभ कर दिया।
- संन्यासी विद्रोह की शुरुआत 1760 ई. से माना जाता है। जो लगभग 1800 ई. तक चला।
- संन्यासी लोगों ने जनता के साथ मिलकर अन्याय के विरुद्ध लड़ने की परंपरा को बनाए रखते हुए सबसे पहले कंपनी की कोठियों तथा कोषों पर आक्रमण किया। इस आंदोलन में बेदखल किये गए किसान, विघटित सिपाही, सत्ताच्युत ज़मींदार तथा धार्मिक नेता शामिल थे। आंदोलनकारियों ने बलपूर्वक धन वसूला तथा अंग्रेज़ी फैक्ट्रियों में लूटपाट की। वॉरेन हेस्टिंग्स ने इस विद्रोह को दबाने के लिये दमन का सहारा लिया तथा आंदोलन को कुचल दिया। संन्यासी विद्रोह का उल्लेख **वंदे मातरम्** के रचयिता **बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय** ने अपने उपन्यास **आनंद मठ** में किया है।

28 आधुनिक भारत में सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन
(Social-Religious Reform Movements in Modern India)

सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन (Social-Religious Reform Movement)

18-19वीं शताब्दी का भारतीय समाज अंधविश्वास, जाति-व्यवस्था, वर्ण-भेद आदि रूढ़ियों के जाल में जकड़ा हुआ था। भारतीय समाज जाति प्रथा के आधार पर दो वर्गों-उच्च वर्ग एवं निम्न वर्ग में बँटा हुआ था, जिसके कारण भारत की बहुसंख्यक जनता तथा उच्च वर्गों के बीच एक दरार पैदा हो गई थी, साथ ही अंग्रेज़ों की औपनिवेशिक नीतियों ने भी भारतीय समाज को बहुत प्रभावित किया। परिणामस्वरूप 19वीं शताब्दी में बौद्धिक एवं सांस्कृतिक उथल-पुथल मची। इस दौरान पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से भारतीयों के मन में एक नई चेतना का संचार हुआ तथा लोग अंग्रेज़ों के वास्तविक चरित्र को समझने लगे थे। भारतीय विद्वानों ने भी अपने समाज की कमज़ोरियों को पहचानकर उन्हें दूर करने के उपाय खोजे। लोग धीरे-धीरे यह मानने लगे कि अपने समाज में फिर से प्राण फूँकने के लिये मानवतावाद, विवेक पर आधारित सिद्धांत, आधुनिक विज्ञान, पश्चिमी विचार आदि तत्त्वों को आत्मसात् करना पड़ेगा। 19वीं शताब्दी तक बुद्धिजीवी वर्ग इस बात में विश्वास करने लगा था कि सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलन की तत्काल ज़रूरत है।

सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन के कारण *(Causes of Social-Religious Reform Movement)*

सामाजिक कारण

- ब्रिटिश शासन में अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रसार से भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग ने पाश्चात्य उदारवादी विचारधारा से प्रभावित होकर भारतीय सामाजिक ढाँचे एवं संस्कृति में विद्यमान कमज़ोरियों को दूर करने का प्रयास किया।
- ब्रिटिश सरकार द्वारा समाज-सुधार के लिये बनाए गए कानून भी सामाजिक-आर्थिक सुधार आंदोलन का कारण बने।
- ईसाई मिशनरियों के द्वारा ईसाई संस्कृति के प्रसार पर बल, प्रतिक्रियास्वरूप भारतीयों द्वारा अपनी संस्कृति एवं धर्म के प्रति पुनरुत्थान प्रक्रिया पर बल दिया गया।
- प्रेस, समाचार-पत्र, पत्र-पत्रिकाओं आदि के द्वारा अंग्रेज़ों की व्यवहारहीनता, शोषण एवं क्रूरता का ज्ञान भारतीयों को हुआ। अतः भारतीयों ने अपने समाज व धर्म की रक्षा हेतु प्रयत्न आरंभ किये।
- जवाहरलाल नेहरू, समाजवाद के समर्थक थे, वह 1933 में ब्रिटिश शासन, देशी राज्यों, ज़मींदारवाद तथा पूंजीवाद को उखाड़ फेंकना चाहते थे।

सांस्कृतिक कारण

- प्राच्यवादियों ने भारतीय अतीत और गरिमा का गुणगान किया, फिर अतीत की गरिमा पर बल देकर भारतीयों का ध्यान अपनी संस्कृति और परंपरा की ओर आकृष्ट किया।
- 19वीं शताब्दी में इस सांस्कृतिक जागरण के प्रस्फुटन का एक कारण पश्चिमी देशों द्वारा प्रचारित की जा रही अपनी जातीय, भाषायी एवं सांस्कृतिक श्रेष्ठता के विरुद्ध भारतीयों की प्रतिक्रिया भी थी।

आर्थिक कारण

1813 ई. के एक्ट के द्वारा मुक्त व्यापार की नीति तथा भारतीय समाज में हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन का उदय हुआ।

राजनीतिक कारण

- आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव व विदेशी शक्ति द्वारा पराजित होने से उत्पन्न चेतना ने उन्नीसवीं सदी में एक नई जागृति को जन्म दिया।
- 19वीं शताब्दी में जाति-प्रथा के बंधन शिथिल पड़ने लगे थे, पारंपरिक स्वावलंबी ग्रामीण अर्थव्यवस्था ने अपनी पहचान खो दी थी। इन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों ने भारतीयों के बीच एकता बढ़ाई।
- लोकतंत्र एवं राष्ट्रवाद की भावनाएँ 19वीं शताब्दी के अंतिम दशक में चरम सीमा पर थीं तथा इन भावनाओं ने शीघ्र ही पुनर्जागरण की प्रक्रिया के उद्भव एवं विकास के लिये पृष्ठभूमि तैयार की।

सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन का स्वरूप *(Nature of Social-Religious Reform Movements)*

सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। यह आंदोलन सामाजिक एवं धार्मिक सुधारों से संबंधित था, जिसका प्रमुख लक्ष्य समाज-सुधार था। चूँकि, तत्कालीन समाज में अनेक कुरीतियाँ एवं आडंबर व्याप्त थे, इसीलिये धर्म में सुधारों के बगैर समाज सुधार तर्कहीन था। इस संबंध में विद्वानों में दो प्रमुख विचारधाराएँ थीं, जो प्रगतिशील एवं पुनर्स्थापनावाद वर्ग में बँटी थीं।

विचारधाराएँ

प्रगतिशील विचारधारा	पुनर्स्थापनावादी विचारधारा
❑ बाह्य मूल्यों से प्रेरित, सर सैयद अहमद खाँ	❑ स्वदेशी मूल्यों से प्रेरित, देवबंद शाखा
❑ राजा राममोहन राय	❑ स्वामी दयानंद सरस्वती

(i) प्रगतिशील विचारधारा के सुधारकों का मानना था कि तत्कालीन भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं रूढ़ियों का अंत तभी संभव है, जब पाश्चात्य संस्कृति के कुछ ऐसे तत्त्वों को आत्मसात् किया जाए, जो मौलिक स्वरूप में भारतीय परंपरा से मेल खाते हों, किंतु ये विद्वान पश्चिमी संस्कृति का अंधानुकरण नहीं करना चाहते थे। इन विद्वानों ने तर्कवाद एवं बुद्धिवाद को अपनाने पर बल दिया,

29 राष्ट्रवाद का उदय (Rise of Nationalism)

राष्ट्रवाद कोई अचानक उत्पन्न होने वाली विचारधारा नहीं है बल्कि यह एक दीर्घकालिक विकासशील प्रक्रिया है। राष्ट्र के लिये एक ऐसी भावना का होना आवश्यक है जो व्यक्तियों के समूह को आत्मिक रूप से जोड़ती है और जब राष्ट्र व्यक्ति की पहचान बन जाता है तब राष्ट्रीयता जन्म लेती है और जब राष्ट्रीयता एक विचारधारा का रूप ले लेती है, तब राष्ट्रवाद का उदय होता है। यही विचारधारा **राष्ट्रीय आंदोलन** या **स्वतंत्रता आंदोलन** की उत्पत्ति का महत्त्वपूर्ण कारक बनती है।

कुछ इतिहासकार भारत में राष्ट्रवाद की उत्पत्ति को **प्रेरण-अनुक्रियावाद** से स्पष्ट करते हैं जिसका आशय है- ब्रिटिश सरकार ने अपने हितों के लिये भारत में जो व्यवस्थाएँ लागू कीं, भारतीयों ने उसी पर अनुक्रिया कर राष्ट्रवादी भावना को विकसित किया। उल्लेखनीय है कि भारत में राष्ट्रवाद की उत्पत्ति एक आधुनिक संकल्पना मानी जाती है। भारत में जैसे-जैसे औपनिवेशिक शासन विभिन्न अवस्थाओं से गुज़रा, वैसे-वैसे **भारतीय राष्ट्रवाद** भी विकसित होता गया। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना बहुत तेज़ी से विकसित हुई और भारत में एक संगठित राष्ट्रीय आंदोलन का सूत्रपात हुआ। इसी समय **दिसंबर 1885** में **भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस** की स्थापना हुई, जिसके नेतृत्व में भारतीयों ने एक लंबा और साहसपूर्ण संघर्ष चलाया और अंततः 15 अगस्त, 1947 को देश को ब्रिटिश दासता से मुक्ति मिली।

भारतीय राष्ट्रवाद के उदय के कारण (Causes of Rise of Indian Nationalism)

भारत में राष्ट्रीय आंदोलन अथवा राष्ट्रवाद का उदय अनेक कारणों तथा परिस्थितियों का परिणाम था, जिन्हें निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है-

विदेशी आधिपत्य *(Foreign Mastery)*

- आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद बुनियादी तौर पर विदेशी आधिपत्य की चुनौती के जवाब के रूप में उभरा। स्वयं ब्रिटिश शासन की परिस्थितियों ने भारतीय जनता में राष्ट्रीय भावना विकसित करने में सहायता की।
- राष्ट्रवाद की जड़ें भारतीय जनता के हितों तथा भारत में ब्रिटिश हितों के टकराव में थीं। भारतीय समाज के प्रत्येक वर्ग ने यह अनुभव किया कि लंकाशायर के उद्योगपतियों तथा अंग्रेज़ों के दूसरे प्रमुख वर्गों के हितों के लिये उनके अपने हितों का बलिदान दिया जाता है।
- किसान अपने उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा भू-राजस्व के रूप में देने से असंतुष्ट थे तथा जब कभी किसान ज़मींदारों और सूदखोरों के दमन के खिलाफ विद्रोह करते, तब पुलिस तथा सेना कानून व्यवस्था के नाम पर उसको कुचल दिया करती थी।
- दस्तकार और शिल्पी वर्ग ने यह महसूस किया कि सरकार विदेशी प्रतियोगिता को प्रोत्साहन देकर उनको तबाह कर रही थी तथा उनके पुनर्वास के लिये कोई प्रयास नहीं किया जा रहा था।
- 20वीं शताब्दी में आधुनिक कारखानों, खदानों तथा बागानों के मज़दूरों ने जब कभी **मज़दूर ट्रेड यूनियन, हड़ताल, प्रदर्शन** तथा **संघर्ष** आदि के द्वारा स्वयं की स्थिति को सुधारने का प्रयास किया, तब सरकार का पूरा तंत्र उनके खिलाफ उठ खड़ा होता था।
- समाज के कई वर्गों ने यह भली-भाँति समझ लिया था कि बढ़ती बेरोज़गारी का समाधान केवल तीव्र औद्योगीकरण से संभव है जो एक स्वाधीन सरकार द्वारा किया जा सकता है।
- स्वयं ब्रिटिश शासन भारत के आर्थिक पिछड़ेपन का प्रमुख कारण बनता गया और यह भारत के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक तथा राजनीतिक विकास में प्रमुख बाधक तत्त्व बन चुका था।
- उभरते हुए भारतीय पूंजीपति वर्ग ने भी जल्द ही यह समझ लिया कि वह साम्राज्यवाद के कारण नुकसान उठा रहा था। अपनी शैशव अवस्था में उन्हें सरकार की सक्रिय सहायता की ज़रूरत थी लेकिन कोई सहायता नहीं मिली और उन्हें विदेशी पूंजीपतियों के साथ असमान प्रतियोगिता में खड़ा होना पड़ा।

आधुनिक शिक्षा *(Modern education)*

- शिक्षित भारतीयों का उभरता हुआ वर्ग अपने देश की दयनीय आर्थिक व राजनीतिक स्थिति को समझने के लिये नए-नए आधुनिक ज्ञान का उपयोग कर रहा था। यह शिक्षित वर्ग आगे चलकर राष्ट्रीय आंदोलन का नेता एवं संगठनकर्त्ता बना।
- अंग्रेज़ों ने भारत में शैक्षणिक प्रणाली के आंग्ल-प्राच्य भाषा विवाद को रोककर आंग्ल शिक्षा को अपनाया। इस शिक्षा प्रणाली द्वारा ब्रिटिश भारतीयों में मानसिक गुलामी सृजित कर अपने साम्राज्य को स्थायी रूप देना चाहते थे जिसे तत्कालीन ब्रिटिश उदारवादी विचारकों ने भारत को आधुनिकीकरण से जोड़ा।
- नया शिक्षित वर्ग तत्कालीन आधुनिक मूल्यों को समझने लगा और उसमें लोकतांत्रिक आदर्शों, उदारवादी विचारों और मानव अधिकारों के प्रति संवेदना पैदा हुई।
- शिक्षित वर्ग ने जब **बेंथम** व **मिल** जैसे राजनीतिक विचारकों को पढ़ा तथा कई उदारवादी विद्वानों के लेखों व भाषणों को सुना तो उनमें भारतीयों के अधिकारों के प्रति चेतना पैदा हुई और इसी ने राष्ट्रवादी भावना के विकास की शुरुआत की।

प्रशासनिक एवं आर्थिक एकीकरण *(Adminstrative and Economic Integration)*

- अंग्रेज़ों ने अपने आर्थिक हितों (शोषण) के लिये अलग-थलग पड़े क्षेत्रों, विशेषतः गाँवों को बाज़ार से जोड़ा, जिसके कारण इन क्षेत्रों

30 राष्ट्रीय आंदोलन का प्रथम चरण
(First Phase of National Movement)

भारत लंबे समय तक ब्रिटिश शासन का उपनिवेश रहा है। ब्रिटेन की औपनिवेशिक नीतियों तथा ब्रिटिश सत्ता से मुक्ति हेतु उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ और एक संगठित आंदोलन की शुरुआत हुई। भारतीय इतिहास में ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध लंबे समय तक चलने वाले इस आंदोलन को राष्ट्रीय आंदोलन के नाम से जाना जाता है। यद्यपि मई 1857 के विद्रोह को भारतीय स्वतंत्रता का प्रथम संघर्ष माना जाता है, परंतु इसकी औपचारिक शुरुआत 1885 ई. में कॉन्ग्रेस की स्थापना के साथ हुई जो कई उतार-चढ़ावों से गुज़रते हुए 15 अगस्त, 1947 तक अनवरत रूप से जारी रहा।

यद्यपि उन्नीसवीं शताब्दी का भारत विभिन्न जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्र में विभाजित था तथा ब्रिटिश शासकों ने भी इस विभाजन को बनाए रखने के लिये **फूट डालो और राज करो** की नीति को अपनाया, तथापि भारत एक भौगोलिक इकाई मात्र नहीं था, बल्कि इस विविधता में सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक चेतना भी अंतर्निहित थी, जिसने राष्ट्रीय आंदोलन के आरंभ, विकास एवं सफलता की ओर अग्रसर होने में सहायता प्रदान की। विविधता के मूल में अंतर्निहित यह राष्ट्रीय चेतना ही थी, जिसने राष्ट्रवाद का विकास किया तथा भाषा, धर्म, जाति के बंधन को लाँघते हुए लोगों को एक सूत्र में संगठित किया। हालाँकि यह भी सच है कि अंग्रेज़ों द्वारा स्थापित प्रशासनिक व्यवस्था तथा आधुनिक विचारों के प्रचार-प्रसार ने भी एक सीमा तक राष्ट्रवाद को प्रोत्साहित किया, लेकिन ब्रिटिश शासन का कभी भी यह उद्देश्य नहीं था कि भारत में राष्ट्रवाद का बीजारोपण हो बल्कि उन्होंने अपने औपनिवेशिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये ही कुछ सुधार किये, जिससे भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ और वे राष्ट्रीय आंदोलन के लिये प्रेरित हुए।

उदारवादी चरण (Moderate Phase)

भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस की स्थापना के साथ ही भारत में राष्ट्रीय आंदोलन के एक नए युग का आरंभ हो गया। चूँकि कॉन्ग्रेस का शुरुआती नेतृत्व जिन नेताओं ने किया, उनका स्वभाव सरल एवं कार्य-प्रणाली उदार प्रकृति की थी, इसलिये राष्ट्रीय आंदोलन के प्रथम चरण को उदारवादी चरण के नाम से जाना जाता है। कॉन्ग्रेस के आरंभिक 20 वर्षों के काल को **उदारवादी राष्ट्रीयता** की संज्ञा दी जाती है, क्योंकि इस काल में कॉन्ग्रेस की नीतियाँ काफी उदार थीं। इस समय कॉन्ग्रेस पर समृद्धशाली मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों का प्रभाव था, जिनमें अधिकतर पत्रकार, वकील, इंजीनियर एवं डॉक्टर इत्यादि प्रमुख थे। ये उदारवादी नेता अंग्रेज़ी सरकार के प्रति निष्ठावान थे तथा उन्हें अपना शत्रु नहीं मानते थे। दादाभाई नौरोजी के इन शब्दों से अंग्रेज़ों के प्रति उनकी भावनाओं की मूर्त अभिव्यक्ति का पता चलता है- "हम ब्रिटिश प्रजा हैं, हम अपने हक की मांग कर सकते हैं। अगर हमें ब्रिटेन की सर्वश्रेष्ठ संस्थाओं से वंचित रखा जाता है तो फिर भारत को अंग्रेज़ों के स्वामित्व में रहने से क्या लाभ? यह तो एक और एशियाई निरंकुश शासन मात्र होगा।"

इस समय के उदारवादी नेताओं में फिरोज़शाह मेहता, बदरुद्दीन तैयबजी, व्योमेश चंद्र बनर्जी, सुरेंद्रनाथ बनर्जी, आनंद मोहन बोस और रमेशचंद्र दत्त प्रमुख थे। कालांतर में द्वारिकानाथ गांगुली, एम.जी. रानाडे, वी. राघवाचारी, आनंद चारलू और गोपालकृष्ण गोखले भी इसमें शामिल हो गए।

उदारवादियों की कार्य-प्रणाली
(Working System of Moderates)

उदारवादियों को नरमपंथी के नाम से भी जाना जाता था। उनकी कार्य-प्रणाली एक विशिष्ट तरीके की थी, जिसमें वे अपने प्रतिवेदनों, भाषणों और लेखों के माध्यम से ब्रिटिश सरकार एवं उनके द्वारा स्थापित अंग्रेज़ी राज की प्रशंसा करते थे और अपनी मांगों को उनके समक्ष रखते थे। वे अपनी उन मांगों को समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं के माध्यम से स्पष्ट करते थे ताकि जनता पर भी उनके कार्यों का प्रभाव पड़े।

इस चरण में कॉन्ग्रेस का अधिवेशन वर्ष में मात्र तीन दिन चलता था और वार्षिक अधिवेशनों के अतिरिक्त अपने कार्यक्रमों को जारी रखने के लिये कॉन्ग्रेस के पास किसी भी संगठित तंत्र का अभाव था।

इन उदारवादियों को आरंभ में यह विश्वास था कि भारतीयों के सारे कष्टों के पीछे नौकरशाही का भेदभावपूर्ण व्यवहार ही ज़िम्मेदार है और यदि ब्रिटिश सरकार को इस वास्तविक स्थिति से अवगत कराया जाए तो ब्रिटिश सरकार भारत में कल्याणकारी विकास कार्यक्रमों को बढ़ावा देगी।

उन्हें अंग्रेज़ों की न्यायप्रियता तथा उदारता का भ्रम था जिसके कारण वे एक अधिवेशन से दूसरे अधिवेशन तक समान प्रकार की मांगों से संबंधित प्रस्तावों की ही पुनरावृत्ति करते थे, चाहे ब्रिटिश सरकार उनकी मांगों को माने या न माने, वे कभी भी उग्र विरोध नहीं करते थे। उनकी मांगों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है- संवैधानिक, प्रशासनिक और आर्थिक।

उदारवादियों की संवैधानिक मांगें
(Constitutional Demands of the Moderates)

- उनकी मांग थी कि विधायिकाओं में भारतीयों की संख्या में वृद्धि की जाए।
- वायसरॉय की कार्यकारी परिषद में दो भारतीय सदस्यों को भी शामिल किया जाए।
- पश्चिमोत्तर प्रांत एवं पंजाब में नई परिषदें स्थापित की जाएँ।
- ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन भारत में भी उसी प्रकार से स्वशासन की स्थापना हो जैसा कि कनाडा एवं ऑस्ट्रेलिया में स्थापित थे।

31 राष्ट्रीय आंदोलन का द्वितीय चरण
(Second Phase of National Movement)

भारत के स्वतंत्रता संघर्ष में उदारवादियों, उग्रवादियों, महिलाओं तथा किसानों एवं मज़दूरों ने अपना सर्वस्व योगदान दिया। परिणामस्वरूप निरंतरता एवं परिवर्तन का दौर शुरू हुआ। परिवर्तन के क्रम में सफलता एवं असफलता निरंतर बनी रही। वस्तुतः आंदोलन की उद्देश्यपूर्ति तुरंत/शीघ्र न होकर जनता की जागृति, स्वतंत्रता के प्रति कर्त्तव्य, साम्राज्यवाद पर दबाव डालने और उसके लिये सर्वस्व न्योछावर करने की भावना तथा आत्म-त्याग की भावना का विकास करने से होती है। यदि इस पहलू के आधार पर उदारवादियों एवं क्रांतिकारियों की भूमिका के बारे में विचार करें तो हम पाते हैं कि उन्होंने भारत के युवकों में जागृति फैलाने और साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष में जुट जाने का आह्वान किया। वस्तुतः राष्ट्रीय आंदोलन एवं भारतीय स्वतंत्रता संग्राम भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न वैचारिक आयामों से होकर गुज़रे।

होमरूल आंदोलन (Home Rule Movement)

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान 1916 ई. में बाल गंगाधर तिलक और श्रीमती एनी बेसेंट द्वारा 'अखिल भारतीय होमरूल लीग' की स्थापना की गई। इसी लीग के द्वारा ब्रिटिश शासन के खिलाफ होमरूल आंदोलन राष्ट्रीय स्तर पर चलाया गया। इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन रहते हुए संवैधानिक तरीके से स्वशासन को प्राप्त करना था। तिलक और एनी बेसेंट ने आयरलैंड के होमरूल आंदोलन से प्रेरणा लेते हुए भारत में इस आंदोलन का सूत्रपात किया था।

इस आंदोलन के तहत स्वशासन के उद्देश्य को महत्त्व देते हुए धार्मिक स्वतंत्रता, राष्ट्रीय शिक्षा तथा राजनीतिक एवं सामाजिक सुधार को अपना आधारभूत कार्यक्रम बनाया गया और इस आंदोलन में दो अलग-अलग होमरूल लीगों की स्थापना की गई, पहला बाल गंगाधर तिलक द्वारा अप्रैल 1916 में पूना में तथा दूसरा सितंबर 1916 में एनी बेसेंट के द्वारा मद्रास में। दोनों होमरूल लीगों ने प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भारत को होमरूल या स्वराज्य देने की मांग के पक्ष में भारत में ज़ोरदार प्रचार किया। इसी आंदोलन के दौरान तिलक ने यह लोकप्रिय नारा दिया- "स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा।"

तिलक की होमरूल लीग *(Tilak's Home Rule League)*

जून 1914 में तिलक 6 वर्ष के कारावास के बाद जेल से रिहा हुए और एक बार पुनः सक्रिय राजनीति में भाग लेने लगे, परंतु इस बार उन्होंने कॉन्ग्रेस से अलग एनी बेसेंट से मिलकर होमरूल आंदोलन शुरू करने की दिशा में प्रयास शुरू कर दिया। एनी बेसेंट कॉन्ग्रेस के नेतृत्व में आंदोलन शुरू करना चाहती थीं। अतः अप्रैल 1916 में तिलक ने बेलगाँव (पूना) में होमरूल लीग की स्थापना की। तिलक द्वारा स्थापित होमरूल के अध्यक्ष जोसेफ बैपतिस्ता तथा सचिव एन.सी. केलकर थे। इस होमरूल लीग का कार्यक्षेत्र महाराष्ट्र (बंबई को छोड़कर), कर्नाटक, मध्य प्रांत एवं बरार तक फैला था।

तिलक ने मराठी भाषा में **केसरी** और अंग्रेज़ी में **मराठा** नामक पत्रों के माध्यम से होमरूल की अवधारणा का प्रचार किया। उन्होंने संपूर्ण भारतवर्ष का भ्रमण कर स्वराज प्राप्ति के लिये जनमत तैयार करने का प्रयास किया।

एनी बेसेंट की होमरूल लीग *(Annie Besant's Home Rule League)*

सितंबर 1916 में एनी बेसेंट ने भी ऑल इंडिया होमरूल लीग की स्थापना की। उनके द्वारा स्थापित लीग के सचिव जॉर्ज अरुंडेल थे तथा बी.पी. वाडिया, सी.पी. रामास्वामी अय्यर, जवाहरलाल नेहरू, वी. चक्रवर्ती तथा जे. बनर्जी जैसे प्रमुख लोकप्रिय नेता इसके सदस्य थे। एनी बेसेंट की लीग का मुख्यालय अड्यार (मद्रास) में स्थापित किया गया था। उसने लीग को अखिल भारतीय स्वरूप प्रदान किया। तिलक के कार्य को छोड़कर लगभग संपूर्ण भारत में इस लीग की संस्थाएँ सक्रिय थीं। 1917 ई. में एनी बेसेंट कॉन्ग्रेस की अध्यक्ष बनीं। अध्यक्ष पद पर रहते हुए उन्होंने कहा, "भारत अब अनुग्रहों के लिये अपने घुटनों पर नहीं, बल्कि अधिकारों के लिये अपने पैरों पर खड़ा है।"

होमरूल आंदोलन की समाप्ति *(End of Home Rule Movement)*

- होमरूल आंदोलन के बढ़ रहे प्रभाव से चिंतित होकर सरकार ने जून 1917 में एनी बेसेंट, जॉर्ज अरुंडेल, वी.पी. वाडिया को गिरफ्तार कर लिया। इस गिरफ्तारी के विरोध में सर एस. सुब्रह्मण्यम् अय्यर ने अपनी **नाइटहुड** की उपाधि वापस कर दी।
- गोपाल कृष्ण गोखले द्वारा स्थापित संस्था सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी के सदस्यों को लीग में प्रवेश की अनुमति नहीं थी।
- ब्रिटिश प्रधानमंत्री लॉयड जॉर्ज ने भारतीय जनमत को सांत्वना देने के विचार से भारतीय राष्ट्रीय भावना के समर्थक एडविन मॉण्टेग्यू को भारत सचिव नियुक्त किया। उन्होंने ब्रिटिश संसद में घोषणा की कि "शिक्षित भारतीयों की मांग निःसंदेह उनका अधिकार है तथा उन्हें उत्तरदायित्व सँभालने और आत्मनिर्णय का अवसर दिया जाना चाहिये।"
- मॉण्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों की घोषणा के बाद एनी बेसेंट इसकी समर्थक बन गईं, दूसरी ओर तिलक को **इंडियन अनरेस्ट** के लेखक वेलेंटाइन शिरोल पर मानहानि का मुकदमा करने के लिये ब्रिटेन जाना पड़ा, फलस्वरूप होमरूल आंदोलन नेतृत्वविहीन होकर समाप्त हो गया।

32 राष्ट्रीय आंदोलन में मज़दूरों एवं महिलाओं की सहभागिता (Participation of Labourers and Women in National Movement)

भारत की स्वतंत्रता के लिये राष्ट्रीय आंदोलन की शुरुआत 1885 ई. में कॉन्ग्रेस की स्थापना के साथ हुई। आरंभ से ही इस आंदोलन में भारत के बुद्धिजीवियों एवं मध्यम वर्ग का वर्चस्व रहा, जबकि मज़दूरों एवं महिलाओं की सहभागिता शुरुआती दौर में बहुत कम थी। जिस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आधुनिक उद्योगों की स्थापना के साथ ही भारत में मज़दूर संघों की गतिविधियाँ दिखाई देने लगीं, उसी प्रकार राष्ट्रीय आंदोलन में जब गांधीवादी चरण की शुरुआत हुई तो महिलाओं की सहभागिता इस आंदोलन में दिखने लगी।

ब्रिटिश भारत में मज़दूर आंदोलन (Labour movements in British India)

- ब्रिटिश भारत में मज़दूरों के शोषण, उनकी समस्याओं तथा कारखानों में विद्यमान असुविधाजनक कार्य करने की परिस्थितियों में सुधार हेतु 1878 ई. में **सोराबजी शपुरजी बंगाली** ने सार्थक प्रयास किया। उन्होंने बंबई विधानसभा में श्रमिकों की कार्यावधि के बारे में विधेयक पेश किया, परंतु वह पारित नहीं हो सका। इससे पूर्व 1870 ई. में बंगाल के शशिपाद बनर्जी ने मज़दूरों के लिये एक क्लब की स्थापना की और **भारत श्रमजीवी** नामक पत्रिका का प्रकाशन किया।
- भारत में गठित प्रथम श्रमिक संघ **बंबई मिल हैंड्स एसोसिएशन** था, जिसकी स्थापना 1890 ई. में **एन.एम. लोखंडे** ने की थी।
- 1897 ई. में स्थायी सदस्यता तथा स्पष्ट नियमों के साथ पहली बार एक मज़दूर संगठन **अमलगमेटिड सोसायटी ऑफ रेलवे सर्वेंट्स ऑफ इंडिया एंड बर्मा** का गठन हुआ।
- भारतीय मज़दूर वर्ग द्वारा प्रथम संगठित हड़ताल ब्रिटिश स्वामित्व वाली रेलवे में तब हुई, जब 1899 ई. में ग्रेट इंडियन पेनिनसुलर में कार्यरत श्रमिकों ने कम मज़दूरी और अधिक कार्य अवधि के कारण हड़ताल कर दी।
- 1908 ई. में क्रांतिकारी नेता बाल गंगाधर तिलक को 6 वर्ष की सज़ा होने पर बंबई के कपड़ा मज़दूरों ने लगभग एक सप्ताह की हड़ताल कर दी, जो मज़दूरों की पहली राजनीतिक हड़ताल मानी जाती है।

श्रमिक संघों का गठन *(Formation of Labour Union)*

- भारत का पहला आधुनिक मज़दूर संगठन **मद्रास मज़दूर संघ** था, जिसकी स्थापना 1918 ई. में बी.पी. वाडिया द्वारा की गई थी।
- मज़दूरों के लिये अखिल भारतीय स्तर का प्रथम संगठन 1920 ई. में एन.एम. जोशी, जोसेफ बैपटिस्ट तथा लाला लाजपत राय के प्रयासों से **अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कॉन्ग्रेस (एटक)** के नाम से बनाया गया।
- एटक का प्रथम सम्मेलन 1920 ई. में बंबई में आयोजित किया गया, इसके प्रथम अध्यक्ष **लाला लाजपत राय** थे।
- कॉन्ग्रेस ने अभी तक मज़दूरों की मांगों एवं अधिकारों को अपने घोषणा-पत्र में शामिल नहीं किया था। सर्वप्रथम 1920 ई. के नागपुर अधिवेशन में श्रमिकों की न्यायोचित मांग तथा उनके संघर्ष के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई।
- लाला लाजपत राय के अतिरिक्त सी.आर. दास, जी.ए. सेन गुप्ता, जी.एफ. एंड्रूज, सुभाष चंद्र बोस तथा जवाहरलाल नेहरू आदि नेताओं ने भी **अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कॉन्ग्रेस** (एटक) की अध्यक्षता की थी।
- ट्रेड यूनियन आंदोलन के क्रांतिकारी चरण का समय था- 1926 से 1939 तक।

महत्त्वपूर्ण तथ्य

- बिहार समाजवादी पार्टी (Bihar Socialist Party) के गठन में मुख्य भूमिका फूलन प्रसाद वर्मा जयप्रकाश नारायण एवं राहुल सांकृयतायन ने निभाई। इस पार्टी दो मुख्य लक्ष्य थे- पहला समाजवादी विचारों को बढ़ावा देना एवं दूसरा मज़दूर एवं किसान संगठनों का गइन करना। पार्टी की संगठन समिति में अब्दुल बारी अध्यक्ष, गंगा शारन सिन्हा और वी.पी. वर्मा सचिव व अम्बिका कांत सिन्हा खजांची थे।
- इसकी पहली कॉन्फ्रेंस का आयोजन बिहार समाजवादी पार्टी की ओर से मई 1934 में पटना में जयप्रकाश नारायण के द्वारा किया गया। इस कॉन्फ्रेंस की अध्यक्षता आचार्य नरेंद्रदेव ने की, जबकि सचिव स्वयं जयप्रकाश नारायण थे।
- अखिल भारतीय समाजवादी पार्टी का प्रथम वार्षिक अधिवेशन अक्टूबर 1934 में संपूर्णानंद की अध्यक्षता में बंबई में हुआ। इस सम्मेलन में समाजवादी पार्टी की कार्यकारिणी का गठन किया गया, जिसके जनरल सेक्रेटरी जयप्रकाश नारायण थे।
- **जवाहरलाल नेहरू तथा सुभाषचंद्र बोस** जैसे वामपंथी कॉन्ग्रेसियों ने इस पार्टी के गठन का स्वागत तो किया, परंतु दोनों ही इस पार्टी में शामिल नहीं हुए।
- 1936 ई. में जवाहरलाल नेहरू ने इस पार्टी के तीन सदस्यों- नरेंद्रदेव, जयप्रकाश नारायण तथा अच्युत पटवर्द्धन को कॉन्ग्रेस कार्यसमिति में शामिल किया।

नोट: 'New lamps for old' लेख शृंखला (1893-94) में सर्वहारा वर्ग के साथ संपर्क से बाहर होने के लिये कॉन्ग्रेस की आलोचना की गई थी। इन लेखों को लिखने वाले अरविंद घोष थे।

- गांधी जी ने अहमदाबाद मिल मज़दूरों की मांगों के लिये 1918 ई. में **अहमदाबाद टेक्सटाइल लेबर एसोसिएशन** की स्थापना की थी।

33 गणतंत्र के रूप में भारत का उदय
(Rise of India in the Form of Republic)

गणतंत्र के रूप में राष्ट्र-निर्माताओं ने भारत की विविधता को एक समस्या के रूप में न देखते हुए सकारात्मक दृष्टिकोण के साथ इस विविधता को एक शक्ति का स्रोत माना। क्योंकि भारत दुनिया का सबसे अधिक एवं जटिल सांस्कृतिक विभिन्नताओं वाला देश है, अत: गणतंत्र के रूप में भारत का निर्माण विविधता में एकता की अवधारणा के साथ हुआ। हालाँकि, एक राष्ट्र के रूप में भारत के निर्माण में अनेक जटिलताएँ भी मौजूद थीं, परंतु स्वतंत्रता उपरांत भारतीय राष्ट्र का निर्माण एक वृहद् रणनीति के तहत किया गया। इस रणनीति का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष संविधान था, जिसमें समस्त नागरिकों को धर्म, जाति व लिंग आधारित भेदभाव को समाप्त कर, समाज के हर वर्ग को पूरी समानता देने की बात कही गई। आरक्षण तथा प्रतिबद्धता के माध्यम से भारतीय संविधान ने वंचित वर्गों के हितों को पुष्ट करने का प्रयास किया। इस संविधान को 26 जनवरी, 1950 को पूर्णरूपेण लागू करने के साथ ही भारत का उदय गणतंत्र के रूप में हुआ।

राज्यों का पुनर्गठन (Reorganization of States)

भाषा व संस्कृति का गहरा संबंध होता है तथा इसका असर जनता के रीति-रिवाज़ों पर भी पड़ता है। वैसे भी हिंदुस्तान विविधताओं से भरा देश है, जहाँ कई प्रकार की भाषाएँ, विभिन्न लिपियाँ, व्याकरण, शब्द-भंडार व साहित्यिक परंपराएँ पहले से ही विद्यमान हैं।

राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस पार्टी ने सर्वप्रथम **1917 ई.** में ही स्वतंत्रता के बाद होने वाले राज्यों के गठन को भाषायी आधार पर करने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की थी। **1920 ई.** में कॉन्ग्रेस के **नागपुर अधिवेशन** के बाद भाषायी आधार पर ही कॉन्ग्रेस प्रदेश कमेटियों का गठन हुआ था। उपर्युक्त आधारों पर भाषायी गठन के सिद्धांत को बढ़ावा मिला। भाषा के आधार पर कॉन्ग्रेस की उपसमितियों को संगठित करने के निर्णय का गांधीजी ने भी स्वागत किया था। स्वतंत्रता के बाद नए भारत में प्रांतों का गठन भाषायी आधार पर करने का समर्थन गांधी, नेहरू, पटेल व अन्य कॉन्ग्रेसी नेताओं द्वारा भी किया गया था।

परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत देश के सामने भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की जटिलताएँ समस्या बनकर खड़ी हो गईं, क्योंकि ब्रिटिश भारत में भारतीय प्रदेशों की जो सीमाएँ बनाई गई थीं, वे ब्रिटिश हितों के अनुरूप व अतार्किक थीं। इन प्रदेशों की सीमाओं का निर्धारण करते समय ब्रिटेन द्वारा भाषा व संस्कृति की समरूपता का ध्यान नहीं रखा गया था।

अंग्रेज़ों ने भारत को अपना उपनिवेश बनाने के बाद प्रशासनिक सुविधा को ध्यान में रखते हुए मनमाने तरीके से भारत को नए सिरे से बड़े-बड़े प्रांतों में बाँट दिया, एक भाषा बोलने वालों की भू-क्षेत्रीय समरसता पूरी तरह से भंग कर दी गई। बहुभाषी व बहुजातीय प्रांत बनाए गए। अत: इस विषमता को समाप्त करने हेतु कॉन्ग्रेस के शीर्ष नेताओं ने स्वतंत्रता उपरांत भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन का विचार बनाया, परंतु देश के विभाजन के बाद धार्मिक आधार पर लोगों में दूरियाँ बढ़ने के कारण भाषायी आधार पर एक नई दूरी पैदा करने के पक्ष में पं. नेहरू, सरदार पटेल, सी. राजगोपालाचारी सहित कॉन्ग्रेस का शीर्ष नेतृत्व अब नहीं था। अत: सर्वप्रथम संविधान सभा ने एस.के. धर के नेतृत्व में **धर आयोग** का गठन किया, जिसने भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की मांग ठुकरा दी।

धर आयोग

भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन उचित है या नहीं, इसकी जाँच के लिये संविधान सभा के अध्यक्ष **डॉ. राजेंद्र प्रसाद** ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के अवकाश-प्राप्त न्यायाधीश **एस.के. धर** की अध्यक्षता में **1948 ई.** में चार सदस्यीय एक आयोग का गठन किया। इस आयोग ने राष्ट्रीय एकता को खतरा एवं प्रशासन को भारी असुविधा का तर्क देकर भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन का विरोध किया और प्रशासनिक सुविधा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन का समर्थन किया।

संविधान सभा के इस प्रयास से जन-भावनाएँ संतुष्ट न होकर और भड़क गईं, विशेष तौर पर दक्षिण भारत सबसे अधिक असंतुष्ट रहा। वहाँ इस समस्या ने राजनीतिक रूप लेना शुरू कर दिया। अत: कॉन्ग्रेस ने इस समस्या को समाप्त करने हेतु **दिसंबर 1948** में एक समिति गठित कर दी, जिसके सदस्य जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल और कॉन्ग्रेस अध्यक्ष पट्टाभि सीतारमैया थे। इस समिति को भाषायी राज्य के प्रश्न पर फिर से विचार करने का काम दिया गया। इस समिति ने भाषायी आधार पर राज्यों के गठन की कॉन्ग्रेस की उस पुरानी स्वीकृति को खारिज कर दिया, जिसमें कहा गया था कि पार्टी भाषायी आधार पर सूबों के गठन का समर्थन करेगी। कमेटी ने तर्क दिया, "भाषा महज़ एक जोड़ने वाली शक्ति नहीं, बल्कि एक-दूसरे से अलग करने वाली ताकत भी है।"

जे.वी.पी. कमेटी की रिपोर्ट महज़ एक क्षणिक समाधान ही निकाल पाई। इससे भाषा संबंधी विवाद पूरी तरह से थमा नहीं बल्कि और उग्र होता चला गया। देश के विभिन्न भागों- मद्रास, मैसूर, बंबई और हैदराबाद में फैले कन्नड़-भाषी लोगों के लिये अलग राज्य की मांग के समर्थन में एक संयुक्त कर्नाटक आंदोलन शुरू हो गया। कुछ इसी तर्ज़ पर संयुक्त महाराष्ट्र तथा महागुजरात आंदोलन भी उठ खड़े हुए। सिक्खों ने पंजाब में भाषा के साथ-साथ धार्मिक आधार पर भी अलग राज्य की मांग की। इन सभी आंदोलनों में सबसे अधिक आक्रामक आंदोलन आंध्र प्रदेश के तेलुगु-भाषी लोगों ने पोट्टि श्री रामुल्लू के नेतृत्व में प्रारंभ किया। 58 दिन के आमरण-अनशन के बाद 1952 ई. में रामुल्लू की मृत्यु हो गई। श्री रामुल्लू की मृत्यु के 3 दिन बाद प्रधानमंत्री नेहरू ने तेलुगू-भाषियों

34 स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् के प्रमुख घटनाक्रम
(Major Events After Independence)

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत का एक राष्ट्र के रूप में उभरना अचानक घटित होने वाली घटना न होकर एक ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम था। भारतीय सभ्यता में विविधता के लक्षणों को हम प्राचीन काल से ही देख सकते हैं। जैसा कि कवि **रवींद्रनाथ टैगोर** ने भी माना है कि "भारत की एकता भावनाओं की एकता है।" स्वतंत्रता आंदोलन ने भारतीयों को राजनीतिक व भावनात्मक रूप से जोड़ दिया था, साथ ही भारत को एक राष्ट्र का स्वरूप दे दिया था। लेकिन अभी भी भारत को पूरी तरह से राष्ट्र नहीं कहा जा सकता था, बल्कि यह राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में ही था। क्योंकि भारतीय राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया दीर्घकालीन व सतत् रूप से चलने वाली प्रक्रिया थी।

वहीं दूसरी तरफ राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने वाले नेतागण (पटेल, नेहरू, मेनन आदि), जो विभिन्न क्षेत्र, भाषा व धर्म से संबंधित थे, फिर भी जब इस नए गणतंत्र की बुनियाद रख रहे थे तो उन्होंने भारत के एकीकरण और राष्ट्रीय एकता की प्रक्रिया को न सिर्फ बनाए रखना चाहा बल्कि उसे भविष्य में और अधिक विकसित करने के बारे में भी सोचा।

राष्ट्र का विभाजन (Partition of Nation)

15 अगस्त, 1947 को भारत आज़ाद हुआ। स्वतंत्र भारत के पहले प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने संविधान सभा तथा राष्ट्र को संबोधित करते हुए 'ट्रीस्ट विद डेस्टिनी' नामक अपने अविस्मरणीय भाषण में भारतीय जनता की भावनाओं को व्यक्त किया। देश अब आज़ाद हो चुका था। अपने सपनों को साकार करने का समय आ गया था।

स्वतंत्र भारत का जन्म कठिन परिस्थितियों में हुआ था। आज़ादी की कीमत देश के विभाजन से चुकानी पड़ी। कठिन परिस्थितियों में चुनौतियों का सामना करते हुए भारत को विकास का रास्ता तय करना था।

विभाजन

'ये दाग-दाग उजाला, ये शब-गज़ीदा सहर
वो इंतज़ार था जिसका, ये वो सहर तो नहीं।'

मशहूर शायर फैज़ अहमद फैज़ की ये पंक्तियाँ विभाजन की पीड़ा को बड़े ही गंभीर शब्दों में बयाँ करती हैं। 1940 के बाद उपजी राजनीतिक परिस्थितियों के बीच मुस्लिम लीग के 'द्वि राष्ट्र सिद्धांत' को मान लिया गया। इंडिया के नाम से चिह्नित भू-भाग को 'भारत' और 'पाकिस्तान' नाम के देशों में बाँट दिया गया। यह विभाजन दर्दनाक था और इसे वास्तविकता देना और भी कठिन था। धार्मिक बहुसंख्या को विभाजन का आधार बनाया गया, लेकिन 14-15 अगस्त, 1947 की आधी रात तक यह फैसला नहीं हो पाया था कि पंजाब और बंगाल के कौन-से इलाके पाकिस्तान और कौन-से भारत में हैं। पंजाब और बंगाल का बँटवारा विभाजन की सबसे बड़ी त्रासदी थी।

बड़े पैमाने पर आबादी का स्थानांतरण हुआ, जो कि मानव-इतिहास के अब तक ज्ञात सबसे बड़े स्थानांतरणों में से एक था। धर्म के नाम पर लोगों ने एक-दूसरे को मारा। लोग अपना घर-बार, कारोबार और ज़मीन छोड़ने पर मजबूर हुए। महीनों, सालों तक उन्हें शरणार्थियों के रूप में शिविरों में जीवन बिताना पड़ा। कल तक लोगों का जो अपना वतन था, आज वहीं वे बेगाने थे।

महात्मा गांधी बँटवारे के समय सांप्रदायिक दंगे रोकने के लिये कलकत्ता में थे। उनके प्रयासों से हिंसा में काफी कमी आई, इसीलिये लॉर्ड माउंटबेटन ने उन्हें 'वन मैन आर्मी' कहा था। लेकिन गांधी जी को इसकी कीमत अपनी शहादत से चुकानी पड़ी। एक हिंदू अतिवादी नाथूराम गोडसे ने 30 जनवरी, 1948 को गांधी जी की संध्याकालीन प्रार्थना के दौरान उन्हें गोली मार दी। गांधी जी की मौत का प्रभाव बहुत चमत्कारी था। विभाजन से जुड़ी क्रोध और हिंसा धीरे-धीरे मंद पड़ गई।

रियासतों का एकीकरण (Integration of Princely States)

स्वतंत्रता के समय भारत के अंतर्गत तीन तरह के क्षेत्र थे। पहला ब्रिटिश भारत के क्षेत्र, जो कि भारत के गवर्नर जनरल के सीधे नियंत्रण में थे। दूसरे क्षेत्र देशी राज्य (Primary States) थे, तीसरे प्रकार के अंतर्गत फ्राँस और पुर्तगाल के औपनिवेशिक क्षेत्र (चंद्रनगर, पांडिचेरी, गोवा आदि) थे। इन सभी क्षेत्रों को एक राजनीतिक इकाई के रूप में एकीकृत करना भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस का घोषित लक्ष्य था। स्वतंत्र भारत की अंतरिम सरकार ने समय के साथ इन लक्ष्यों को हासिल भी किया।

देशी रियासतों की संख्या को लेकर इतिहासकारों में मतभेद है, निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि रियासतों की कुल संख्या 500 से अधिक थी। इनके आकार, हैसियत तथा रियासती संरचना में भी भिन्नता थी। जहाँ एक तरफ कश्मीर व हैदराबाद जैसी बड़ी रियासतें थीं, जो किसी यूरोपियन देश के बराबर थीं तो वहीं दूसरी तरफ इतनी छोटी रियासतें भी थीं, जिनके तहत केवल एक अथवा दो दर्जन गाँव आते थे।

कंपनी शासनकाल में ही अनेक संधियों के माध्यम से इन देशी रियासतों ने ब्रिटेन को 'सर्वोच्च शक्ति' स्वीकार कर लिया था। इन रियासतों को कच्चे माल, औद्योगिक उत्पादन और रोज़गार के अवसरों के लिये ब्रिटिश भारत पर निर्भर रहना पड़ता था। इनमें से कई देशी रियासतों के पास अपनी मुद्रा, रेलवे लाइन तथा मुहरें भी थीं। देश के लगभग 40% भू-भाग पर विस्तारित अधिकांश रियासतों में स्वतंत्र होने की महत्त्वाकांक्षा थी, जिसे ब्रिटिश प्रधानमंत्री क्लीमेंट एटली द्वारा 20 फरवरी, 1947 की इस घोषणा से बल मिला कि 'भारत की स्वतंत्रता' के साथ देशी रियासतें भी स्वतंत्र हो जाएंगी। यही वजह थी कि कुछ रियासतों ने स्वयं के स्वतंत्र रहने का निर्णय भी कर लिया, परंतु भारत के एकीकरण में यह एक समस्या थी। अत: पटेल-मेनन की जोड़ी ने

35 वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय विदेश नीति
(Indian Foreign Policy in Global Perspective)

भारत की विदेश नीति के मूलभूत तत्त्व राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान ही निर्मित होने शुरू हो गए थे, जब राष्ट्रीय नेतृत्व ने विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर अपनी विचारधारा के अनुसार नीतियाँ बनानी शुरू कर दी थीं। एक राष्ट्र के रूप में स्वतंत्र विदेश नीति पर चलने का प्रयत्न आज़ादी के बाद की भारतीय राजनीति की विशेषता थी। भारतीय विदेश नीति लंबे इतिहास और हाल की घटनाओं की परिणति थी। विश्व परिस्थितियों में क्रांतिकारी परिवर्तनों के बावजूद आज़ादी के संघर्ष और आज़ादी के आरंभिक वर्षों में विकसित विशेषताओं की निरंतरता बाद के वर्षों में भी बनी रही। भारतीय विदेश नीति के मुख्य शिल्पकार पंडित जवाहरलाल नेहरू थे। स्वतंत्रता के बाद से मृत्युपर्यंत तक भारतीय विदेश नीति इनके वृहद् मानवतावादी व्यक्तित्व तथा सिद्धांतों के आस-पास ही घूमती रही। अपनी विदेश नीति के तहत भारत सिर्फ निष्पक्ष या सैनिक गुटों से दूर ही नहीं रहा बल्कि इसने अपनी आवश्यकतानुसार तत्कालीन महाशक्तियों का उपयोग भी देशहित में किया। भारतीय विदेश नीति में गुटनिरपेक्षता के सिद्धांत का अर्थ था–हर मुद्दे पर आज़ादी से रुख अपनाना, सही या गलत की स्वयं पहचान करना।

भारत की विदेश नीति और पंचशील समझौता (India's Foreign Policy and Punchsheel Agreement)

भारत सन् 1947 में स्वाधीन हुआ और इसके सामने दुनिया में अपनी छवि विकसित करने और उस काल की अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति से सामंजस्य स्थापित करने जैसी चुनौतियाँ थीं। भारत की विदेश नीति पर स्वाधीन भारत के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू की गहरी छाप थी। उन्होंने इसको पाला-पोसा था, जीवन और शक्ति प्रदान की थी और अनेकानेक उपायों से इसे आकार दिया था, लेकिन उन्होंने इसे गढ़ा नहीं था। पं. नेहरू ने खुद ही स्वीकार किया था कि भारत की विदेश नीति की जड़ें भारत की सभ्यता और परंपराओं में, भारत के स्वतंत्रता संग्राम में, इसकी भौगोलिक स्थिति में और शांति-सुरक्षा, विकास तथा इस जगत् में एक स्थान के लिये भारत की तलाश में स्थित थीं। उन्हीं के शब्दों में, "हमारी नीति को 'नेहरू नीति' कहना बिल्कुल गलत है...इसे मैंने जन्म नहीं दिया। यह नीति भारत की परिस्थिति में, भारत के अतीत की सोच में, भारत के संपूर्ण दृष्टिकोण में निहित है, यह निहित है भारतीय मानस के उस अनुकूलन में जो स्वाधीनता संग्राम के दौरान हुआ था और यह आज की दुनिया के हालात में निहित है।" पं. नेहरू पर अक्सर यह आरोप लगाया जाता था कि विदेश नीति के मामले में वह आदर्शवादी और नैतिकतावादी हैं। दरअसल वह इनमें से कोई नहीं थे। अंतर्राष्ट्रीय मामलों में भारत के हितों या इसकी संप्रभुता का बलिदान किये बगैर उन्होंने देश को शीतयुद्ध के बारूदी सुरंगों भरे क्षेत्र के बीच चलाने में भारी यथार्थवाद को प्रदर्शित किया था। लोग उन घरेलू तथा अंतर्राष्ट्रीय हालातों को भूल जाते हैं, जिनमें नेहरू ने भारत की विदेश नीति को स्वरूप प्रदान किया था।

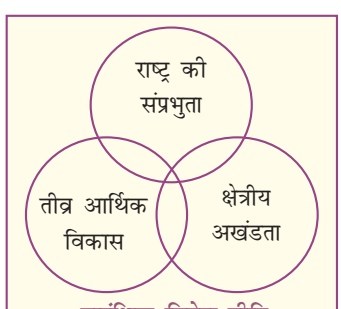

प्रारंभिक विदेश नीति

सन् 1947 में जब स्वाधीनता प्राप्त हुई, भारत के पास नाममात्र की सैनिक और आर्थिक शक्ति थी। विभाजन सेना में भी हुआ था और इसका एक हिस्सा पाकिस्तान चला गया था। जहाँ तक अर्थव्यवस्था का संबंध है, इसके लिये आलोचनापूर्वक यह कहा जाता था कि भारत में तब एक पिन भी नहीं बनती थी। नेहरू का मानना था कि अपने मुट्ठी भर संसाधनों का इस्तेमाल प्राथमिकता के आधार पर आर्थिक विकास के लिये करना चाहिये अथवा सैनिक तैयारियों के लिये करना चाहिये। जो सैनिक शक्ति मज़बूत आर्थिक नींव पर आधारित नहीं, वह स्थायी नहीं होगी, वह बालू पर बनाई गई नींव जितनी क्षणिक होगी। अनेक देशों के उदाहरण सामने थे, जैसे कि उस काल का पाकिस्तान और थाईलैंड, जिन्होंने मूलतया सैनिक शक्ति पर भरोसा किया था, जिसे उनकी अर्थव्यवस्था का समर्थन प्राप्त नहीं था। इन पर सदा अस्थिर शासकों का राज रहा और वे लगातार दूसरे देशों पर निर्भर रहे थे। पं. नेहरू अत्यंत यथार्थवादी थे। वे जानते थे कि देश का स्थायित्व और इसका सामाजिक सामंजस्य इसकी आर्थिक शक्ति पर टिका होता है। उनकी समझ थी कि वह प्रत्येक पैसा जो वे आर्थिक विकास में लगा रहे हैं, वह अंतिम विश्लेषण में राष्ट्र की सुरक्षा और जीवन क्षमता की पक्की गारंटी है। सैनिक शक्ति का महत्त्व है लेकिन इसको हासिल करने के लिये एक मज़बूत आर्थिक आधार का होना ज़रूरी है। आपको पहले वे कारखाने बनाने चाहियें, जो दूसरे कारखाने बनाएँ। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो आपको भारी उद्योग स्थापित करने होंगे, क्योंकि आर्थिक शक्ति की नसें केवल यही प्रदान करेंगे। जवाहरलाल नेहरू ने इस्पात मिलों, इंजीनियरिंग और ऊपरी ढाँचे का निर्माण करने वाली परियोजनाएँ बनाने और उनको लागू करने पर ध्यान केंद्रित किया। भारत की वर्तमान शक्ति उन आर्थिक आधारशिलाओं की ऋणी है, जिनको जवाहरलाल नेहरू के समय स्थापित किया गया था।

भारत के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्रीय एजेंडा तय करने में निर्णायक भूमिका निभाई। वे प्रधानमंत्री के साथ-साथ विदेश मंत्री भी थे। प्रधानमंत्री व विदेश मंत्री के रूप में 1946 से 1964 तक उन्होंने भारत की विदेश नीति की रचना और क्रियान्वयन पर गहरा प्रभाव डाला। उनकी विदेश नीति के तीन बड़े उद्देश्य थे- कठिन संघर्ष से प्राप्त संप्रभुता को बचाए रखना, क्षेत्रीय अखंडता को बनाए रखना और तेज़ रफ्तार से आर्थिक विकास करना। वे इन उद्देश्यों को गुटनिरपेक्षता की नीति अपनाकर हासिल करना चाहते थे। उन दिनों देश में कुछ पार्टियाँ

36 भारत एवं बिहार के प्रसिद्ध व्यक्तित्व
(Famous Personalities of India and Bihar)

प्रमुख विचारक (Major Thinkers)

महात्मा गांधी *(Mahatma Gandhi)*

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का जन्म गुजरात के पोरबंदर में 2 अक्टूबर, 1869 को हुआ। इनका पूरा नाम मोहनदास करमचंद गांधी था। इनके पिता करमचंद गांधी राजकोट रियासत के दीवान और माता पुतलीबाई अत्यंत धार्मिक प्रकृति की महिला थीं। इनकी प्रारंभिक शिक्षा राजकोट एवं शामलदास कॉलेज, भावनगर में ही हुई तथा उच्च शिक्षा के लिये वे इंग्लैंड चले गए, जहाँ से उन्होंने कानून की परीक्षा उत्तीर्ण कर बैरिस्टर की डिग्री प्राप्त की। 1893 में वे दक्षिण अफ्रीका गए तथा वहाँ रंगभेद का शिकार हुए। दक्षिण अफ्रीका में उन्होनें सत्याग्रह द्वारा रंगभेद का संगठित विरोध किया। वर्ष 1915 में भारत लौटकर उन्होंने परतंत्र भारत को स्वतंत्र कराने एवं देश के कल्याण के लिये खुद को झोंक दिया। महात्मा गांधी केवल आंदोलनकर्त्ता हों नहीं अपितु दार्शनिक भी थे।

जन्म	–	2 अक्टूबर, 1869
जन्मस्थान	–	पोरबंदर, गुजरात
पिता	–	करमचंद गांधी
माता	–	पुतलीबाई
पत्नी	–	कस्तूरबा गांधी
मृत्यु	–	30 जनवरी, 1948
रचनाएँ	–	एक आत्मकथा या सत्य के साथ मेरे प्रयोग, हिंद स्वराज

उन्होंने एक आदर्श समाज एवं राष्ट्र की स्थापना हेतु विभिन्न सिद्धांतों का प्रतिपादन ही नहीं किया अपितु उन्हें अमल में लाने का प्रयास भी किया। साथ ही जनता से अपील भी कि यदि इन सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप में अपनाएँ तो एक आदर्श समाज की स्थापना हो सकती है। सत्य एवं अहिंसा के महान मार्ग पर चलते हुए उन्होंने अनेक आंदोलन चलाए और प्रायः सफलता भी प्राप्त की। भले ही अनेक यातनाएँ सहनी पड़ी हों, जेल जाना पड़ा हो, भूखा रहना पड़ा हो किंतु वे कभी अपने उद्देश्य से विचलित नहीं हुए।

महात्मा गांधी के नैतिक विचार

महात्मा गांधी नव्य वेदांत दर्शन की परंपरा वाले प्रमुख विचारक हैं। नव्य वेदांत दर्शन जगत को भ्रम मानने के स्थान पर ईश्वर की अभिव्यक्ति मानता है। प्रकृति के कण-कण में ईश्वर विद्यमान है और प्रत्येक मानव में भी इस रूप में ईश्वर है। इसलिये नव्य वेदांत के अधिकांश दार्शनिक मानव सेवा को ही प्रभु सेवा मानते हैं। महात्मा गांधी पर सर्वाधिक प्रभाव वेदांत, दर्शन, उपनिषद तथा गीता का है। गांधीजी ने पश्चिमी दर्शन व धर्मों से बहुत कुछ सीखा। ईसा मसीह से उन्होंने 'करुणा' का विचार लिया। जॉन रस्किन की पुस्तक 'अनटु दिस लास्ट' (unto this last) का गहरा प्रभाव उनके हिंद स्वराज्य पर देखा जा सकता है। गांधी के अराजकतावादी विचारों पर टॉलस्टाय तथा हेनरी डेविड थोरी का प्रभाव है।

पंचव्रत पर गांधीजी के विचार: पंचव्रत पर गांधीजी के विचार निम्नलिखित हैं–

- **अहिंसा:** महात्मा गांधी उपनिषद दर्शन पर आधारित 'इशावास्यमिदं सर्वं' के विचार को मानते हैं। जिसका अर्थ है जगत के कण-कण में ईश्वर की उपस्थिति है। ईश्वर ही अलग-अलग तरीके से विभिन्न मनुष्यों, पेड़-पौधों, अन्य प्राणियों तथा भौतिक वस्तुओं से जगत में व्याप्त होता है। इन सभी अभिव्यक्तियों में संबंधों का स्वस्थ होना नैतिक समाज की शर्त है। इन संबंधों को उचित रखने की मूल युक्ति है अहिंसा। अहिंसा सिर्फ राजनीतिक आंदोलन का हथियार नहीं है बल्कि नैतिक जीवन को जीने का सबसे मूलभूत तरीका है। अहिंसा का अर्थ नकारात्मक भी है और सकारात्मक भी। मन, वचन, कर्म से किसी प्राणी को कष्ट न पहुँचाना और कष्ट पहुँचाने वाला विचार भी न लाना इसका नकारात्मक अर्थ है जबकि सकारात्मक अर्थ में सभी प्राणियों के प्रति दया, प्रेम, सेवाभाव और सहानुभूति रखना शामिल है।

  महात्मा गांधी की अहिंसा की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–
  - अहिंसा सिर्फ आदर्श नहीं है। जिस प्रकार हिंसा पशु समुदाय का प्राकृतिक नियम है वैसे ही अहिंसा मानव समुदाय का।
  - अहिंसा का पूर्ण पालन करने के लिये ईश्वर में अटूट विश्वास ज़रूरी है। ईश्वर पर विश्वास से मनुष्य समझ जाता है कि जिसके साथ वह हिंसा करना चाहता है वह भी ईश्वर का ही अभिव्यक्त रूप है। वह ईश्वर के अतिरिक्त किसी से नहीं डरता क्योंकि ईश्वरीय इच्छा के बिना कुछ भी नहीं हो सकता।
  - अहिंसा अव्यावहारिक मार्ग नहीं है बल्कि वह एकमात्र मार्ग है। हिंसा से तात्कालिक और एकपक्षीय समाधान हो सकते हैं किंतु सर्व स्वीकृत और स्थायी समाधान सिर्फ अहिंसा से ही संभव है।
  - अहिंसा और कायरता समानार्थक नहीं है। अहिंसा और कायरता में अंतर यह है कि अहिंसा बहुत ऊँचे आध्यात्मिक व नैतिक बल पर टिकी होती है जबकि कायरता दुर्बलता या विवशता से पैदा होती है।
- **अहिंसा के अपवाद:** गांधी की अहिंसा जैनों की अहिंसा की तुलना में व्यावहारिक और लचीली है। उन्होंने खुद स्पष्ट किया है कि किन परिस्थितियों में अहिंसा के नियम का उल्लंघन किया जाना उचित है–
  - हिंसक पशुओं, रोग के कीटाणुओं, फसल को नष्ट करने वाले कीड़ों की हत्या करना उचित है। लेकिन ऐसा सिर्फ समाज के हित में किया जाए किसी अन्य कारण नहीं।

खंड D

कला एवं संस्कृति

(बिहार के विशेष संदर्भ सहित)

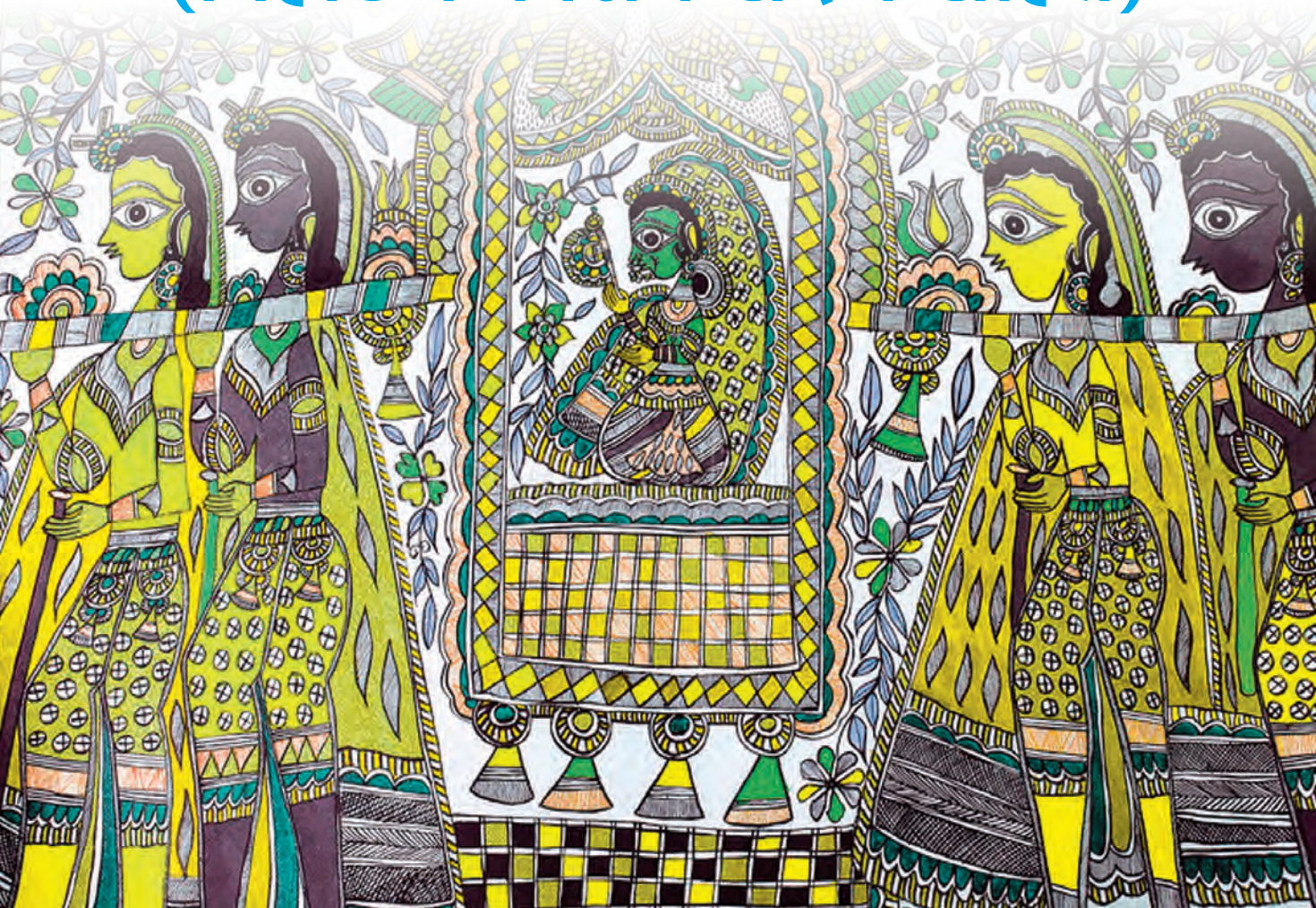

37 कला एवं संस्कृति : एक परिचय
(Art and Culture: An Introduction)

संस्कृति समाज एवं जीवन के विकास के मूल्यों की सम्यक् संरचना है। यह समाज में अंतर्निहित गुणों और उच्चतम आदर्शों के समग्र रूप का नाम है, जो उस समाज के सोचने-विचारने, कार्य करने, खाने-पीने, बोलने, नृत्य, गायन, साहित्य, कला आदि में परिलक्षित होती है।

'संस्कृति' का शाब्दिक अर्थ उत्तम या सुधरी हुई स्थिति से है। संस्कृति किसी समाज में पाए जाने वाले, उच्चतम मूल्यों और आदर्शों की वह चेतना है जो सामाजिक प्रथाओं, रीति-रिवाज़ों, चित्तवृत्तियों, भावनाओं, मनोवृत्तियों, रहन-सहन और आचरण के साथ-साथ उनके द्वारा भौतिक पदार्थों को विशिष्ट स्वरूप दिये जाने में अभिव्यक्त होती है। अंग्रेज़ी में संस्कृति के लिये 'कल्चर' (Culture) शब्द का प्रयोग किया जाता है, जो लैटिन भाषा के 'कल्ट या कल्टस' से लिया गया है, जिसका शाब्दिक अर्थ है- विकसित करना या परिष्कृत करना। सरल शब्दों में कह सकते हैं कि संस्कृति उस विधि का प्रतीक है, जिसमें हम सकारात्मक दिशा में सोचते और कार्य करते हैं।

जवाहरलाल नेहरू के अनुसार, "कला एवं संस्कृति की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती, परंतु इसके लक्षण देखे जा सकते हैं। हर जाति अपनी संस्कृति को विशिष्ट मानती है। संस्कृति एक अनवरत मूल्यधारा है। यह जातियों के आत्मबोध से शुरू होती है। इस मुख्यधारा में संस्कृति की दूसरी धाराएँ मिलती जाती हैं तथा उनका समन्वय होता जाता है। इसलिये किसी जाति या देश की संस्कृति उसी मूल रूप में नहीं रहती, बल्कि समन्वय से वह और अधिक संपन्न और व्यापक हो जाती है।"

कला (Art)

भारतीय परंपरा में कला के अंतर्गत वे सारी क्रियाएँ आती हैं, जिनमें कौशल अपेक्षित है। दूसरे शब्दों में, कला एक प्रकार का कृत्रिम निर्माण है जिसमें शारीरिक और मानसिक कौशलों का प्रयोग होता है। **प्रारंभिक कला** शब्द का प्रयोग भरत द्वारा रचित नाट्यशास्त्र में मिलता है। इसके अलावा 'कामसूत्र', 'शुक्रनीति', प्रबंधकोश (जैन ग्रंथ), ललितविस्तार एवं कलाविकास इत्यादि भारतीय ग्रंथों में कला का वर्णन है। वर्तमान में कला को मानविकी के अंतर्गत रखा जाता है, जिसके अंतर्गत दर्शन, साहित्य, इतिहास और भाषाविज्ञान आदि आते हैं। परंपरागत रूप से निम्नलिखित को कला कहा जाता है। जैसे-

- स्थापत्यकला
- मूर्तिकला
- चित्रकला
- काव्य इत्यादि।
- रंगमंच
- संगीत
- नृत्य

इसके अलावा आधुनिक काल में कॉमिक्स, फोटोग्राफी, विज्ञापन तथा चलचित्रण जुड़ गए।

सभ्यता और संस्कृति में अंतर
(Differences in Civilization and Culture)

सभ्यता और संस्कृति इतिहास के केंद्रीय विषय हैं इसलिये इनमें अंतर और साम्य को समझना भी ज़रूरी है। मनुष्य इतिहास का आधार है तथा प्रकृति का दोहन, शोधन एवं अनुकरण मानव सभ्यता के विकास की जड़ में स्थित है।

सभ्यता	संस्कृति
मनुष्य की प्राथमिक/प्रथम आवश्यकता है- भौतिक आवश्यकता यानी भोजन, वसन (वस्त्र) व निवसन (निवास) की तलाश।	बौद्धिक आवश्यकता मनुष्य की द्वितीयक आवश्यकता है। यानी मन में उठने वाली तमाम जिज्ञासाओं, प्रश्नों आदि का समाधान भी मनुष्य के लिये उतना ही ज़रूरी है, जितना भौतिक आवश्यकता का समाधान।
भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये मनुष्य प्रकृति का अन्वेषण, प्रकृति पर प्रयोग तथा प्रकृति में छिपे अपार संसाधनों का दोहन करता है।	बौद्धिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये मनुष्य प्रकृति का अनुकरण तथा प्रकृति में छिपे रहस्यों का लगातार उद्घाटन करने की कोशिश करता है।
यह प्रत्यक्ष रूप से उपयोगी क्रियाकलाप है। सभ्यता के तमाम क्रियाकलापों, जैसे- भोजन, वस्त्र आदि का संबंध उपयोगिता से है।	यह परोक्ष रूप से उपयोगी क्रियाकलाप है। संस्कृति के तमाम क्रियाकलापों, जैसे- कला, विज्ञान, नृत्य आदि का संबंध मूल्य से है तथा इसके तमाम क्रियाकलाप साध्य हैं।
सभ्यता की माप की जा सकती है।	संस्कृति को मापा या तौला नहीं जा सकता।
सभ्यता की उन्नति अल्पकाल में होती है।	संस्कृति विस्तृत सभ्यता की परिणति है।
सभ्यता का प्रसार तीव्र गति से होता है।	संस्कृति का प्रसार धीरे-धीरे, लेकिन लगातार होता है।
सभ्यता का आधार प्रतियोगिता है, जैसे दो आविष्कारों में प्रतियोगिता होती है।	सांस्कृतिक वस्तुएँ प्रतियोगिता रहित होती हैं, जैसे-आध्यात्मिकता में कोई प्रतियोगिता नहीं होती।
सभ्यता में गहराई का अभाव होता है।	संस्कृति में गहराई होती है।
सभ्यता में सुधार किया जा सकता है।	संस्कृति में सुधार की गुंजाइश कम है।
सभ्यताएँ मिट जाया करती हैं, इसलिये सभ्यता साधन है।	संस्कृतियाँ कभी पूरी तौर पर नहीं मिटती, अत: संस्कृतियाँ साध्य हैं।

38 भारतीय वास्तुकला (Indian Architecture)

विद्वानों के अनुसार, संस्कृत में कला शब्द मुख्यत: अलंकरण या शोभा से संबंधित है। वहीं इतिहास व संस्कृति में इसे सौंदर्य अथवा आनंद से परिभाषित किया गया है। साथ ही प्राचीन भारत में इसे साहित्य और संगीत के समकक्ष माना गया है। कला शब्द के अंग्रेज़ी अनुवाद 'आर्ट' का आशय भी कौशल या निपुणता से है। यानी कला सौंदर्यशास्त्रीय सृजनात्मकता का प्रतीक है। प्रवृत्तियों के आधार पर तो कला के अनेक रूप हैं, किंतु अध्ययन के लिहाज़ से इसका सामान्य वर्गीकरण निम्नलिखित है-

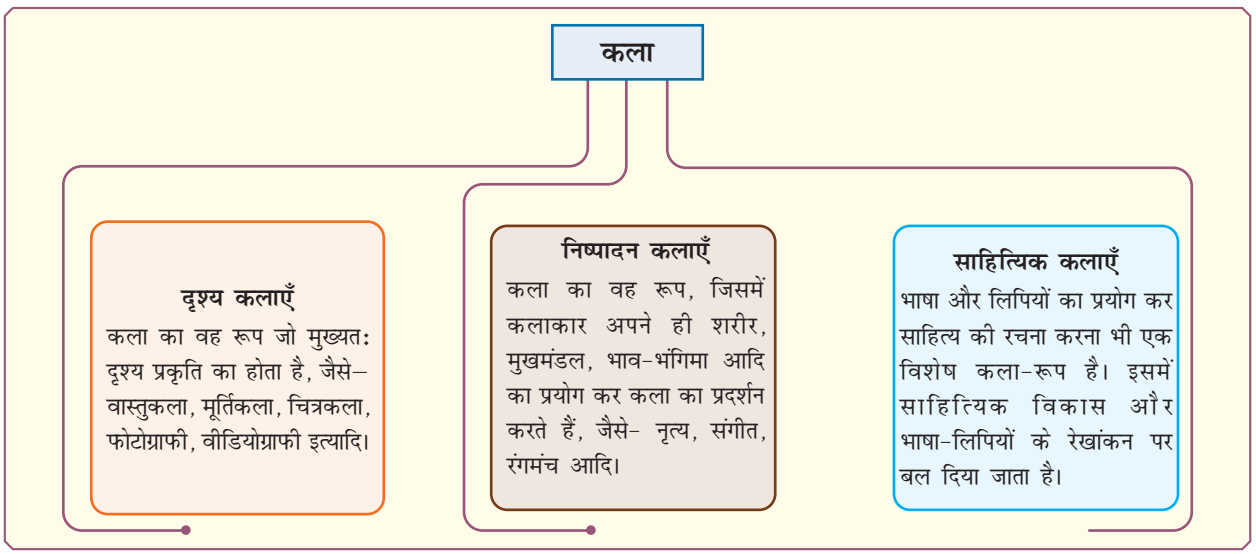

वास्तुकला (Architecture)

कला की भाँति वास्तुकला या स्थापत्यकला के उद्भव एवं विकास का इतिहास भी उतना ही प्राचीन है, जितना कि मानव सभ्यता का। मानव सभ्यता ने जैसे-जैसे प्रगति की, वैसे-वैसे वास्तुकला एवं स्थापत्यकला के रूपों में भी परिवर्तन आता गया। भारत में प्रागैतिहासिक काल से लेकर 12वीं सदी तक स्थापत्यकला के विकास में निरंतरता दिखती है। यद्यपि भारतीय कला पर विदेशी प्रभाव प्रारंभ से ही बार-बार पड़ता रहा है, तथापि कलाओं का भारतीय स्वरूप बरकरार रहा। अत: 13वीं सदी से लेकर ब्रिटिश काल के बीच भी भारतीय स्थापत्यकला ने एक नई ऊँचाई ग्रहण की। भारत में कला और धर्म का घनिष्ठ संबंध रहा है। यहाँ कला में धर्म की भूमिका अथवा आध्यात्मिकता का अत्यधिक प्रभावशाली एवं व्यापक पक्ष दृष्टिगोचर होता है। परिणामस्वरूप कला संप्रेषण का माध्यम बनकर तत्कालीन समाज की आवश्यकता की पूरक बन गई। अध्ययन की दृष्टि से भारतीय स्थापत्यकला को उसकी प्रवृत्तियों, विशेषताओं तथा कालक्रम के संदर्भ में देखना ज़्यादा समीचीन होगा।

सैंधव वास्तुकला *(Indus Architecture)*

हड़प्पा सभ्यता कई दृष्टियों से विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण रही है। स्थापत्य कला भी उसका अपवाद नहीं है। इस सभ्यता के अंतर्गत हमें दो प्रकार के स्थापत्य मिलते हैं। पहले प्रकार में राजनीतिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व के भवन तथा दूसरे में सामान्य रिहायशी मकान।

- सैंधव कला उपयोगितामूलक थी। सिंधु सभ्यता की सबसे प्रभावशाली विशेषता उसकी नगर निर्माण योजना एवं जल-मल निकास प्रणाली थी।
- हड़प्पा सभ्यता के समस्त नगर आयताकार खंड में विभाजित थे जहाँ सड़कें एक-दूसरे को समकोण पर काटती थीं। इसे ग्रिड प्लानिंग कहा जाता है।
- हड़प्पा काल में भवनों में पक्की और निश्चित आकार की ईंटों के प्रयोग के अलावा लकड़ी और पत्थर का भी प्रयोग होता था।
- हड़प्पा सभ्यता के नगरों में कहीं भी मंदिर का स्पष्ट प्रमाण नहीं मिला।

हड़प्पाई लोग भवन निर्माण में सामान्यत: पकाई गई ईंटों, कच्ची ईंटों तथा पत्थर का प्रयोग करते थे। धौलावीरा तथा सुरकोटदा में होने वाले अधिकांश निर्माण में पत्थरों का प्रयोग देखा जा सकता है। फिर, अगर हम विशेषता की दृष्टि से हड़प्पाई स्थापत्य पर दृष्टि डालें तो हमें हड़प्पाई निर्माण योजना में सौंदर्य की जगह उपयोगिता पर विशेष ध्यान दिया जाता था। भवन निर्माण में गीली मिट्टी तथा जिप्सम का प्रयोग जोड़ने वाली सामग्री के रूप में हुआ है।

39 भारतीय मूर्तिकला (Indian Sculpture)

मूर्तिकला भारतीय उपमहाद्वीप में हमेशा से कलात्मक अभिव्यक्ति का प्रिय माध्यम रही है। भारतीय भवनों के निर्माण और साज-सज्जा में जिस तरह से मूर्तिकला का उपयोग किया गया है, वह भवनों के सौंदर्य का विशेष कारक है। भारतीय कला का स्वरूप रोचक, सहज और मूर्तिप्रधान है। ऐसा लगता है मानो भारत में मूर्तिकार और वास्तुकार अक्सर एक ही व्यक्ति होता होगा। प्राचीन भारत में मूर्तिकला का विकास अन्य ललित कलाओं, जैसे- स्थापत्य तथा चित्रकला के साथ ही हुआ दिखता है। मूर्तिकार किसी भावना को मिट्टी, पत्थर अथवा धातु से मंदिर की दीवारों या उसके भीतरी भागों में उकेर देता है।

मूर्तिकला (Sculpture)

भारत में मूर्तिकला का विकास अनेक रूपों में हुआ, जैसे- मृण्मूर्तिकला, धातु मूर्तिकला, पाषाण मूर्तिकला आदि। एक ओर जहाँ यवन मानव शरीर की दैहिक सुंदरता को दर्शाने में सर्वोपरि थे, वहीं भारतीय अपने अध्यात्म को मूर्तियों में ढालने का प्रयास करने में अद्वितीय थे। यह वह अध्यात्म था, जिसमें लोगों के उच्च आदर्श और मान्यताएँ निहित थीं। जब कलाकार प्रकृति देवी यक्षिणी या जनन की प्रतीक नारी या दिव्य सुंदरी की परिकल्पना करता है तो उसकी भौंहें धनुष की चाप, आँखें वक्र मछली, होंठ कमल की पँखुड़ी, बाँहें रमणीय लता और पैर केले के वृक्ष की भाँति शुंडाकार बनाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतीय कला में आध्यात्मिकता और सौंदर्यबोध दोनों का मिश्रित रूप देखने को मिलता है। भारतीय मूर्तिकला का अध्ययन उसके कालक्रम में करना अधिक समीचीन होगा।

हड़प्पाकालीन मूर्तिकला *(Harappan Sculpture)*

- हड़प्पा सभ्यता में मृण्मूर्ति (मिट्टी की मूर्ति), प्रस्तर मूर्ति तथा धातु मूर्ति तीनों गढ़ी जाती थीं। धातु मूर्तियों के निर्माण के लिये हड़प्पा सभ्यता में मुख्यतः तांबे और काँसे का प्रयोग किया जाता था।
- सेलखड़ी पत्थर से बनी मोहनजोदड़ो की योगी की मूर्ति (अधखुले नेत्र, नाक के अग्रभाग पर टिकी दृष्टि, छोटा मस्तक व सँवरी हुई दाढ़ी) इसकी कलात्मकता का प्रमाण है। मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक नर्तकी की धातु मूर्ति (काँसा) भी मूर्तिकला का बेजोड़ नमूना है।

मौर्यकालीन मूर्तिकला *(Mauryan Sculpture)*

मौर्यकालीन मूर्तिकला के अध्ययन हेतु साहित्यिक और पुरातात्त्विक स्रोतों की भरपूर उपलब्धता है। साहित्यिक स्रोतों में आपस्तंभ गृहसूत्र तथा कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' महत्त्वपूर्ण हैं एवं पुरातात्त्विक स्रोतों में मौर्यकालीन मूर्तियों की बड़ी संख्या में प्राप्ति यह साबित करती है कि मौर्य काल में बड़ी संख्या में मूर्तियों का निर्माण होता रहा होगा। यहाँ एक दिलचस्प बात यह है कि मौर्य काल में शानदार पॉलिशयुक्त मूर्तियाँ तो प्राप्त हुई हैं, किंतु कोई स्पष्ट मूर्ति निर्माण शैली नहीं है जैसे कि गांधार या मथुरा कला शैली; फिर भी मौर्यकालीन मूर्तियाँ विशिष्ट हैं। इनकी निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

- चमकदार पॉलिश (ओप), मूर्तियों की सजीव भावाभिव्यक्ति, एकाश्म पत्थर द्वारा निर्मित पाषाण स्तंभ एवं उनके कलात्मक शिखर (शीर्ष)। पत्थरों पर पॉलिश करने की कला इस काल में इस स्तर पर पहुँच गई थी कि आज भी अशोक की लाट की पॉलिश शीशे की भाँति चमकती है।
- मौर्य काल में जो मूर्तियाँ मिली हैं, उनमें पत्थर और मिट्टी की मूर्तियाँ तो हैं, किंतु धातु की कोई मूर्ति नहीं मिली है।
- मौर्य काल में मूर्तियों का निर्माण चिपकवा विधि (अंगुलियों या चुटकियों का इस्तेमाल करके) या साँचे में ढालकर किया जाता था।
- मौर्यकालीन मृण्मूर्तियों के विषय हैं– पशु-पक्षी, खिलौना और मानव अर्थात् ये मृण्मूर्तियाँ गैर-धार्मिक उद्देश्य वाली हैं।
- प्रस्तर मूर्तियाँ अधिकांशतः शासकों द्वारा बनवाई गई हैं, फिर भी किसी देवता को प्रस्तर मूर्ति में नहीं ढाला गया है।
- मौर्यकाल में प्रस्तर मूर्ति-निर्माण में चुनार के बलुआ पत्थर और पारखम (मथुरा ज़िला, उत्तर प्रदेश) से प्राप्त यक्ष की मूर्ति में चित्तीदार लाल पत्थर का इस्तेमाल हुआ है।
- मौर्य काल की मूर्तियाँ अनेक स्थानों, यथा-पाटलिपुत्र, वैशाली, तक्षशिला, मथुरा, कौशांबी, अहिच्छत्र, सारनाथ आदि से प्राप्त हुई हैं।
- कला, सौंदर्य एवं चमकदार पॉलिश की दृष्टि से सम्राट अशोक के समय की मूर्तिकारी को सर्वोत्तम माना गया है।
- पारखम (उत्तर प्रदेश) से प्राप्त 7 फीट ऊँची यक्ष की मूर्ति, दिगंबर प्रतिमा (लोहानीपुर-पटना), धौली (ओडिशा) का हाथी तथा दीदारगंज (पटना) से प्राप्त यक्षिणी मूर्ति मौर्य कला के विशिष्ट उदाहरण हैं।
- सारनाथ स्तंभ के शीर्ष पर बने चार सिंहों की आकृतियाँ तथा उसके नीचे की बल्लरी-आकृति अशोककालीन मूर्तिकला का बेहतरीन नमूना है, जो आज हमारा राष्ट्रीय चिह्न है।
- कुछ विद्वानों के अनुसार मौर्यकालीन मूर्तिकला पर ईरान एवं यूनान की कला का प्रभाव था।

यक्षिणी मूर्ति

मानव प्रतिमा बनाने की मौर्य शिल्पकला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं– जनन और समृद्धि के देवी-देवता, यक्ष और यक्षिणी की विशालकाय प्रतिमाएँ। यह दूसरी–तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व का प्रभावशाली उदाहरण है। दीदारगंज (पटना) से 1917 ई. में प्राप्त यक्षिणी मूर्ति अपने हाथ में चंवर धारण किये हुए है, अतः इसे चंवरधारिणी यक्षिणी कहा गया। इस आकृति के भरे हुए वक्षस्थल, पतली कमर और कूल्हों के माध्यम से नारी सौंदर्य के भारतीय आदर्श को भव्य तरीके से दर्शाया गया है। यह

40 भारतीय चित्रकला (Indian Painting)

रेखा, वर्ण एवं रंग के माध्यम से विचारों तथा भावों को अभिव्यक्त करने की शैली को चित्रकला कहते हैं। आत्माभिव्यक्ति मानव की प्राकृतिक प्रवृत्ति है। अभिव्यक्ति की इच्छा मानवीय अस्तित्व की मूलभूत आवश्यकता है। अपने अंदर के भाव प्रकट किये बिना मनुष्य रह ही नहीं सकता और भावों का आधार होता है– मनुष्य का परिवेश। विद्वानों की मान्यता है कि आदिम काल में जब भाषा और लिपि-चिह्नों का आविर्भाव नहीं हुआ था, तब रेखाओं के संकेत से ही व्यक्ति स्वयं को अभिव्यक्त करता था। गुफाओं के अंदर आज जो शिलाचित्र मिलते हैं, वे ही चित्रकला के आदिम प्रमाण हैं। इतिहास का उदय होने से पूर्व कई हज़ार वर्षों तक जब मनुष्य गुफा में रहता था, उसने अपनी सौंदर्यपरक अतिसंवेदनशीलता और सृजनात्मक प्रेरणा को संतुष्ट करने के लिये शैलचित्र बनाए।

प्रागैतिहासिक काल में मनुष्य गुफाओं में रहता था तो उसने गुफाओं की दीवारों पर चित्रकारी की। बाद में जब नगरीय सभ्यता का उदय होने लगा तो चित्रकारी गुफाओं से निकलकर बर्तनों, वस्त्रों, मुहरों आदि पर होने लगी। बौद्ध एवं जैन धर्म के आगमन और उनकी संवृद्धि के साथ-साथ चित्रकला में और अधिक नवीनता के संकेत मिलने लगते हैं। इस दौर की कला में रंग संयोजन और भाव चित्रण धार्मिकता के गहरे आवरण में डूबा था। फिर मध्यकाल में मुगलों का दौर शुरू होने पर भारतीय चित्रकला में व्यापक परिवर्तन देखने को मिलते हैं। मुगल बादशाह जहाँगीर इस कला का बेहतरीन जानकार था। उत्तर मुगल काल में गिरती राजनीतिक और आर्थिक स्थिति के कारण चित्रकार स्थानीय ज़मींदारों और राजाओं की शरण में चले गए। इस दौरान क्षेत्रीय चित्रकला शैलियों का व्यापक विकास हुआ। अंग्रेज़ी राज में एक बार फिर चित्रकला को नई दृष्टि मिली और कला में आंदोलनों का दौर प्रारंभ हुआ। वर्तमान दौर में चित्रकारों ने कला में नवीनतम प्रयोग, जैसे- विनाइल कंप्यूटर और वीडियो पेंटिंग को अपनाना शुरू किया है। इस प्रकार भारतीय चित्रकला को यदि समग्रता से देखते हैं तो यह विकासमान नज़र आती है। यह मानव सभ्यता के विकास से लेकर आज तक अपनी कलात्मक उर्वरता का परिचय देती रही है।

प्राचीन काल में चित्रकला (Painting in Ancient Time)

प्रागैतिहासिक चित्रकला *(Prehistoric Painting)*

भारत में कला के रूप में चित्रकला का विकास सर्वप्रथम पुरापाषाण काल में हुआ। इस काल की चित्रकला का उदाहरण भीमबेटका एवं आदमगढ़ की गुफाओं में मिलता है। यहाँ बने चित्रों से स्पष्ट होता है कि-

- चित्रकारों को स्त्री-पुरुष का भेद ज्ञात था।
- शिकार ही जीवनयापन का मुख्य साधन था।
- लोग समूह में रह रहे थे। शेर, कुत्ता व हाथी जैसे पशुओं की मौजूदगी थी।

हड़प्पाकालीन चित्रकला *(Harappan Painting)*

- यहाँ कला के नमूने मुहर एवं मृद्भांड पर मिलते हैं। फूल-पत्ती, ज्यामितीय प्रतीकों का अंकन तो है ही, साथ ही पशुओं एवं मानव का भी अंकन मिलता है। इस तरह चित्रों में रेखा प्रधानता है।
- मुहर पर पशुपति का अंकन मिलता है तो साथ ही मृद्भांडों पर पंचतंत्र की चालाक लोमड़ी का कथानक भी अंकित है।

बौद्ध चित्रकला *(Buddhist Painting)*

अजंता चित्रकला

- बौद्ध चित्रकला मुख्यत: भित्ति चित्रकला का उदाहरण है जिसे मुख्यत: अजंता की गुफाओं में देखा जा सकता है। यहाँ बुद्ध का जन्म, गृहत्याग, प्रथम उपदेश आदि का अंकन मिलता है।
- अजंता की गुफाओं की खोज 1824 में जेम्स अलेक्जेंडर ने की थी। इसमें विभिन्न कालखंड की चित्रकला मिलती है। यहाँ द्वितीय सदी ईसा पूर्व से 7वीं सदी ई. तक के चित्र मिलते हैं।
- अजंता में कुल 30 गुफाएँ हैं जो अलग-अलग कालखंड में निर्मित हुई हैं तथा अपने समय की विशिष्टाताओं से युक्त हैं।
- गुफा संख्या 1 तथा 2 नवीनतम हैं, जिनमें अत्यधिक अलंकरण के साथ जातक कथाओं का चित्रण है। गुफा संख्या 9 तथा 10 सर्वाधिक प्राचीन हैं।
- गुप्त काल में अजंता गुफा की चित्रकला अत्यंत विकसित दिखाई पड़ती है। यहाँ गुफा संख्या 16 में मरणासन्न राजकुमारी का अंकन है जिसकी करुणा व वियोग की भावना अत्यंत दर्शनीय है।
- गुफा संख्या 17 को चित्रशाला कहा गया है। इसमें बुद्ध द्वारा गृहत्याग, यशोधरा एवं राहुल का अंकन, सिंह व हाथियों के दृश्य अंकित हैं।
- अजंता गुफा के चित्र मुख्यत: बौद्ध धर्म से संबंधित हैं। इसकी दीवारों एवं छतों पर बनाए गए चित्र जातक कथाओं से लिये गए हैं।
- गुप्त काल में चित्र बनाने की नई तकनीक फ्रेस्को-टेंपरा का प्रयोग अजंता गुफा में किया गया। इसके तहत दीवारों पर गीले प्लास्टर पर ही चित्र बनाकर रंग भर दिये जाते थे। इस तरह अजंता के चित्रों में रेखा प्रधानता, वर्ण योजना, भावाभिव्यक्ति जैसे चित्रकला के सभी तत्त्व मिलते हैं।

बाघ गुफा की चित्रकला

- ये गुफाएँ मध्य प्रदेश में धार ज़िले की कुकशी तहसील में स्थित विंध्य पर्वत श्रेणी में अवस्थित हैं। बाघ गुफा में कुल नौ गुफाएँ हैं जो अजंता के समकालीन हैं।
- बाघ की गुफाओं में बौद्ध धर्म के अलावा सामान्य जीवन के चित्र भी बहुतायत में मिलते हैं यानी ये अजंता की तुलना में अधिक सांसारिक और मानवीय हैं।

41 भारतीय नृत्य, संगीत एवं रंगमंच कलाएँ
(Indian Dance, Music and Theater Arts)

नृत्य एक सार्वभौमिक कला है जिसका जन्म मानव जीवन के आरंभ के साथ ही हुआ है। वस्तुतः नृत्य मानवीय अभिव्यक्ति का रसमय और क्रियात्मक प्रदर्शन है। इसे दूसरे रूप में कहें तो यह एक सशक्त आवेग है जिसके माध्यम से मानव जीवन के दोनों पक्षों, यथा- सुख एवं दुःख को विभिन्न नियंत्रित मुद्राओं द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। इस प्रकार अंग-प्रत्यंग एवं मनोभावों के साथ की गई नियंत्रित यति-गति को नृत्य कहते हैं।

भारतीय परंपरा में नृत्यकला के दो अंग स्वीकार किये गए हैं- तांडव तथा लास्य। तांडव नृत्य का जनक भगवान महादेव (शंकर) को माना गया है। तांडव नृत्य में दो भंगिमाएँ हैं- रौद्र रूप एवं आनंद प्रदान करने वाला रूप। इसका पहला रूप काफी उग्र होता है तथा इसे करने वाले 'रुद्र' कहलाए। जबकि तांडव का दूसरा रूप आनंद प्रदान करने वाला है, जिसे करने वाले शिव 'नटराज' कहलाए।

वहीं, लास्य नृत्य का आरंभ देवी पार्वती से माना जाता है। इसमें नृत्य की मुद्राएँ बेहद कोमल, स्वाभाविक एवं प्रेमपूर्ण होती हैं तथा इसमें जीवन के शृंगारिक पक्षों को विभिन्न प्रतीकों व भावों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है।

भारत में शास्त्रीय नृत्य (Classical Dance in India)

लोकदृष्टि से शिव की नटराज मूर्ति शास्त्रीय नृत्य का प्रतीक है। शास्त्रीय नृत्य से संबंधित उल्लेख भरतमुनि द्वारा लिखित 'नाट्यशास्त्र' एवं आचार्य नंदिकेश्वर द्वारा रचित 'अभिनय दर्पण' में मिलता है। नाट्यशास्त्र में वर्णित मुद्राएँ ही भारतीय शास्त्रीय नृत्य की मूल आधार हैं।

भारतीय नृत्य परंपरा में शास्त्रीय नृत्य की 4 शैलियाँ प्रचलित थीं- भरतनाट्यम, कथकली, कथक एवं मणिपुरी। कुचिपुड़ी एवं ओडिसी को शास्त्रीय नृत्य की मान्यता बाद में मिली। लगभग 20 वर्ष पहले मोहिनीअट्टम को शास्त्रीय नृत्य शैली के रूप में ख्याति मिली, जबकि सत्रिया नृत्य शैली को संगीत नाटक अकादमी द्वारा 15 नवंबर, 2000 को शास्त्रीय नृत्य की सूची में सम्मिलित किया गया। इस प्रकार भारत में वर्तमान समय में 8 शास्त्रीय नृत्य प्रचलित हैं, जिनका वर्णन निम्नलिखित है-

भरतनाट्यम नृत्य (तमिलनाडु)
[Bharatnatyam (Tamilnadu)]

- इस नृत्य शैली का विकास तमिलनाडु में हुआ।
- भरतनाट्यम तमिल संस्कृति में लोकप्रिय एकल नृत्य है जो शुरुआती दिनों में मंदिर की देवदासियों द्वारा भगवान की मूर्ति के समक्ष किया जाता था। इसे 'दासीअट्टम' के नाम से भी जाना जाता था।
- देवदासियों द्वारा किये जाने के कारण इसे समाज में सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता था।
- किंतु 20वीं शताब्दी में रुक्मिणी देवी अरुंडेल तथा ई. कृष्ण अय्यर के प्रयासों ने इस नृत्य को सम्मान दिलाया।
- वर्तमान समय में तमिलनाडु में इस नृत्य की शिक्षा ग्रहण करना तथा नृत्याभ्यास व मंचन को प्रतिष्ठा के रूप में देखा जाने लगा है।
- भरतनाट्यम में नृत्य और अभिनय सम्मिलित होता है। इस नृत्य में शारीरिक भंगिमा पर विशेष बल दिया जाता है। जिसे तीन भागों में बाँटा जाता है- समभंग, अभंग, त्रिभंग। नृत्य का आरंभ आलारिपु/ स्तुति से तथा अंत तिल्लाना से होता है।

भरतनाट्यम नृत्य

- इस नृत्य का उदाहरण नटराज की मूर्ति को माना जाता है।
- इसमें पैरों से लयबद्ध तरीके से ज़मीन पर थाप दी जाती है, पैर घुटने से विशेष रूप से झुके रहते हैं तथा हाथ, गर्दन और कंधे विशेष तरीके से गतिमान होते हैं।
- इस नृत्य के प्रमुख कलाकारों में पद्मा सुब्रह्मण्यम, यामिनी कृष्णमूर्ति, सोनल मानसिंह, मृणालिनी साराभाई, मल्लिका साराभाई आदि हैं।
- इस नृत्य को निम्नलिखित क्रमों में किया जाता है-
  - **अलारिपु:** यह इस नृत्य का शुरुआती चरण होता है। इसमें नर्तक अपने नृत्य देवता तथा दर्शकों की स्तुति कर नृत्य प्रारंभ करता है।
  - **जातीस्वरम:** यह नृत्य का दूसरा चरण होता है। इसमें नर्तक द्वारा अपने कला ज्ञान अर्थात् स्वर, ताल एवं अंग-प्रत्यंग तथा मुद्राओं का परिचय दिया जाता है।
  - **शब्दम:** यह तीसरे क्रम का नृत्य अंश होता है। इसमें बहुविचित्र तथा लावण्यमय तरीके से नृत्य प्रस्तुत करके नाट्यभावों का वर्णन किया जाता है।
  - **वर्णम:** नृत्य के इस अंश में नृत्य कला के अलग-अलग वर्णों को प्रस्तुत किया जाता है। इसमें भाव, ताल और राग, तीनों की प्रस्तुति की जाती है।
  - **पदम:** इस अंश में सात पंक्तियुक्त वंदना क्रमशः तमिल, तेलुगू तथा संस्कृत भाषा में होती है और इसी अंश में नर्तक के अभिनय कौशल का पता चलता है।
  - **तिल्लाना:** यह अंश भरतनाट्यम नृत्य शैली का आखिरी अंश होता है और इसमें बहुविचित्र नृत्य भंगिमाओं के साथ-साथ नारी के सौंदर्य के लावण्य को दिखाया जाता है।

42 भारतीय सिनेमा, युद्धकला एवं खेल
(Indian Cinema, Warfare and Sports)

मानव समाज ने अपने विकास क्रम में अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यमों का विकास किया है। बोलने–लिखने से लेकर चित्र बनाने के साथ चलचित्र (सिनेमा) विचारों को प्रकट करने का सशक्त माध्यम के रूप में विकसित हुआ, साथ ही कला के विभिन्न रूपों, यथा- चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्यकला इत्यादि वे साधन बने जिसने अमूर्त विचारों को मूर्त रूप प्रदान किया। चूँकि मानव के विचार तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं, इसलिये स्वाभाविक रूप से उनकी अभिव्यक्ति जिस भी माध्यम से संपादित होती है, उस पर तत्कालीन समय की छाप होती है। यही वजह है कि हर युग में कला की अपनी एक विशेषता होती है, जो न केवल तत्कालीन समाज का चित्रण करती है, बल्कि उसका वितान फंतासियों से लेकर एक आदर्श समाज की कल्पना तक विस्तृत होता है। सिनेमा भी इस नियम का अपवाद नहीं है अर्थात् यह भी अपने समय की विशेषताओं से युक्त होता है। साथ ही सिनेमा मनोरंजन का भी एक साधन है। किसी समय के समाज के अध्ययन में यह तत्त्व काफी महत्त्वपूर्ण होता है कि उस समय मनोरंजन के कौन-कौन से साधन प्रचलित थे तथा उस समय मनोरंजन का स्वरूप कैसा था? मूक रूप में शुरू हुआ सिनेमा जल्द ही दृश्य-श्रव्य में परिणत हो गया तथा ज्यों-ज्यों तकनीक का विकास होता गया, सिनेमा का स्वरूप और भी उन्नत होता चला गया।

सिनेमा का इतिहास (History of Cinema)

थॉमस एडिसन ने अपने सहयोगी विलियम कैनेडी के साथ मिलकर पहले मोशन कैमरे 'कीनेटोग्राफ' का आविष्कार किया। यह काफी वज़नी था तथा इसका उपयोग करना अत्यंत ही कठिन था। आगे चलकर फ्राँस में 'लुमियर ब्रदर्स' ने अपेक्षाकृत अधिक उन्नत तकनीक से युक्त कैमरा बनाया जिसे 'सिनेमेटोग्राफ' कहा गया। यह उपयोग की दृष्टि से अधिक बेहतर आविष्कार था। इस प्रकार लुमियर ब्रदर्स ने 1895 में दुनिया की पहली फिल्म का प्रदर्शन पेरिस में किया। भारत में भी फिल्म का पहला प्रदर्शन लुमियर ब्रदर्स द्वारा 1896 में मुंबई के वाटसन होटल में किया गया। यह दिलचस्प है कि भारत में सिनेमा का प्रवेश प्रथम 6 माह के अंदर ही हो गया। हालाँकि इसके बाद लगभग 15 वर्षों तक किसी स्वदेशी प्रोडक्शन हाउस द्वारा फिल्मों का निर्माण न हो सका।

हिन्दी सिनेमा का विकास *(Development of Indian Cinema)*

स्वतंत्रता के बाद भारतीय सिनेमा के स्वरूप में भी बदलाव आया तथा विचार कहीं अधिक आज़ादी से सिनेमा के माध्यम से अभिव्यक्त होने लगे। हालाँकि फिल्मों को सेंसर करने की व्यवस्था बनी रही। 'केंद्रीय फिल्म प्रमाणन बोर्ड' (Central Board of Film Certification – CBFC), जो सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के अधीन कार्यरत एक सांविधिक निकाय है, फिल्मों के सार्वजनिक प्रदर्शन के पहले उसे प्रमाण-पत्र जारी करता है। इसका गठन 'सिनेमेटोग्राफ एक्ट, 1952' के तहत किया गया है।

1950–60 के दशक को हिन्दी सिनेमा का 'स्वर्णिम युग' कहा जाता है। महबूब खान, बिमल रॉय, गुरुदत्त, राजकपूर जैसे फिल्मकारों ने अपने समय की फिल्मों का वितान काफी विस्तृत किया। दरअसल, वह दौर काफी उथल-पुथल भरा था। इनमें से अधिकांश फिल्मकारों ने वह दौर देखा था जब भारत औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध संघर्ष कर रहा था तो दूसरी तरफ फासीवाद के विरुद्ध वैश्विक संघर्ष छिड़ा हुआ था। परतंत्र भारत की दयनीय सामाजिक-आर्थिक दशा के बाद जब भारत आज़ाद हुआ तो स्वाभाविक रूप से परिवर्तन की एक व्यापक आस जगी। तत्कालीन सिनेमा में एक तरफ स्वप्न है तो दूसरी तरफ उस स्वप्न व यथार्थ के अंतर्विरोध का चित्रण भी।

उस दौर में बनी कुछ शानदार फिल्मों में गुरुदत्त की 'प्यासा' व 'कागज़ के फूल', राजकपूर की 'आवारा' तथा 'श्री 420', बिमल रॉय की 'दो बीघा ज़मीन', महबूब खान की 'मदर इंडिया' इत्यादि हैं। इसके अतिरिक्त भी उस दौर में कई फिल्में बनीं जिनमें पर्याप्त विविधता देखने को मिलती है। 'आवारा' फिल्म शहरी जीवन के विभिन्न पहलुओं को उद्घाटित करती है तो 'दो बीघा ज़मीन' उस किसान की दारुण व्यथा को व्यक्त करती है जो शोषणकारी ज़मींदार से अपनी ज़मीन को बचाना चाहता है। 'बूट पॉलिश' जहाँ बाल संघर्ष को दिखाती है तो वहीं 'दो आँखें बारह हाथ' उस आदर्श पुलिस ऑफिसर का चित्रण करती है जो सफलतापूर्वक छह अपराधियों का पुनर्वास कराता है। इसके अलावा उस दौर में ही 'मदर इंडिया' जैसी फिल्म भी बनी जिसने सफलता के नए कीर्तिमान स्थापित किये तथा ऑस्कर के लिये नामित भी हुई। बिमल रॉय की 'सुजाता' में छुआछूत के दर्द को उकेरा गया। कुल मिलाकर उस दौर में निर्मित फिल्मों में पर्याप्त विविधता थी और सामाजिक मुद्दों से लेकर प्रेम तथा कॉमेडी– प्रधान फिल्में भी बनीं। 1960 के दशक में बनने वाली फिल्मों में संगीत एक महत्त्वपूर्ण अवयव के रूप में स्थापित हो चुका था। लगभग हर फिल्म का अपना एक अलग प्रकार का संगीत होता था। यह वही दौर था जब भारत चीन व पाकिस्तान से युद्ध लड़ रहा था। अतः स्वाभाविक तौर पर राष्ट्रवादी भावना से युक्त कुछ फिल्में भी बनीं।

1970 का दशक भारतीय सिनेमा के लिहाज़ से काफी परिवर्तनकारी रहा। यह वह दौर था जब भारतीय राजनीति में वामपंथ का प्रभाव मज़बूत हो रहा था तथा सामूहिक प्रतिरोध की भावना बलवती हो रही थी। इसका प्रभाव सिनेमा पर भी पड़ा। उस दौर के नायकों में 'एंग्री यंग मैन' की छवि आरोपित की गई जिसे अमिताभ बच्चन जैसे नायकों ने एक नई ऊँचाई प्रदान की। सत्तर के दशक में देश की राजनीतिक व्यवस्था अस्थिर थी तथा उसे एक ओर जयप्रकाश नारायण जैसे नेताओं से चुनौती मिल

43 विविध (Miscellaneous)

भारत के त्योहार एवं मेले (Festivals and Fairs of India)

भारत मेलों और त्योहारों का देश है। हमारे देश में विभिन्न समुदाय अपने-अपने धार्मिक और सांस्कृतिक विश्वासों के साथ परस्पर प्रेम और भाईचारे के साथ निवास करते हैं। हर धर्म से जुड़े लोगों के अपने सांस्कृतिक और पारंपरिक त्योहार हैं। इनमें से अनेक त्योहार मौसम में आने वाले सालाना परिवर्तनों और उनके साथ गुँथे फसल-चक्र से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। उदाहरण के लिये, पूरे देश में बसंत ऋतु के आने का उत्सव स्थानीय विविधताओं व कलेवर के साथ मनाया जाता है पर इन सबमें प्रकृति के प्रति श्रद्धा का तत्त्व समान रूप से विद्यमान है।

त्योहार भाग-दौड़ वाली ज़िंदगी से थोड़ा समय निकालकर लोगों को अपने प्रियजनों के साथ मिल-बैठने का मौका उपलब्ध कराने के साथ-साथ सामाजिक सद्भाव बढ़ाने में भी सहायक होते हैं।

त्योहारों की महत्ता इस बात में भी है कि वे नई पीढ़ी को अपनी सांस्कृतिक विरासत से न सिर्फ परिचित कराते हैं, बल्कि उन्हें परंपरा का वाहक बनने के लिये भी तैयार करते हैं। भारत के प्रमुख त्योहार, मेले व महोत्सव निम्नलिखित हैं–

राष्ट्रीय पर्व *(National Festival)*

गणतंत्र दिवस

26 नवंबर, 1949 को संविधान सभा ने संविधान को अंगीकार किया व अगले वर्ष 26 जनवरी, 1950 को भारतीय संविधान को लागू किया गया। संविधान को लागू करने हेतु इस तिथि का चुनाव करने के पीछे ऐतिहासिक कारण भी है। उल्लेखनीय है कि 31 दिसंबर, 1929 को भारतीय राष्ट्रीय कॉन्ग्रेस के लाहौर अधिवेशन में 26 जनवरी, 1930 को 'स्वतंत्रता दिवस' के रूप में मनाने की घोषणा की गई थी। अत: जब भारतीय संविधान बनकर तैयार हुआ तो इसे लागू करने के लिये 26 जनवरी, 1950 के दिन का चुनाव किया गया।

इस दिन दिल्ली में 'राजपथ' पर एक भव्य परेड का आयोजन किया जाता है, जिसमें देश की सैन्य क्षमता और सांस्कृतिक विविधता को दर्शाने वाली झाँकियाँ प्रस्तुत की जाती हैं। गणतंत्र दिवस समारोह का समापन 29 जनवरी को, तीनों सेनाओं के संयुक्त बैंड के 'बीटिंग रिट्रीट' कार्यक्रम के साथ होता है। इस दिन पूरे देश में विविध सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है।

स्वतंत्रता दिवस

एक लंबे स्वतंत्रता संघर्ष के बाद भारत को 15 अगस्त, 1947 को ब्रिटिश आधिपत्य से मुक्ति मिली। देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने 'लाल किले' की प्राचीर से राष्ट्रीय ध्वज फहराया व देश के नागरिकों को संबोधित किया। तब से प्रतिवर्ष 15 अगस्त को देश के प्रधानमंत्री 'लाल किले' पर ध्वजारोहण करते हैं व देश को संबोधित करते हुए, स्वतंत्रता प्राप्ति से अब तक की उपलब्धियों और भविष्य की चुनौतियों के बारे में बताते हैं। इसके उपरांत सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन पूरे दिन चलता है। इसी प्रकार के कार्यक्रम देश के सभी राज्यों में भी आयोजित किये जाते हैं।

गांधी जयंती

महात्मा गांधी का जन्मदिवस प्रतिवर्ष 2 अक्टूबर को पूरे देश में हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। अपने अहिंसात्मक आंदोलनों द्वारा देश को आज़ादी दिलाने में केंद्रीय भूमिका निभाने वाले महात्मा गांधी को देश 'राष्ट्रपिता' के तौर पर याद करता है। इस दिन राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री सहित देश के शीर्ष अधिकारी उनकी समाधि पर श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हैं; इसके साथ ही देश में गांधीजी की विचारधारा से संबंधित व्याख्यानों और सेमिनारों का भी आयोजन किया जाता है।

गांधीजी की विचारधारा को महत्त्व देते हुए, 'संयुक्त राष्ट्र महासभा' की जनरल असेंबली ने 15 जून, 2007 को गांधीजी के जन्मदिवस (2 अक्टूबर) को प्रतिवर्ष 'अंतर्राष्ट्रीय अहिंसा दिवस' के रूप में मनाए जाने की घोषणा की।

धार्मिक पर्व *(Religious Festival)*

हिंदू त्योहार

मकर संक्रांति: मकर संक्रांति हिंदुओं का एक प्रमुख पर्व है। यह हिंदुओं का एकमात्र ऐसा त्योहार है, जो प्रतिवर्ष निश्चित अंग्रेज़ी तिथि से अर्थात् 14 जनवरी (कुछ अपवादों को छोड़कर जब यह 13 या 15 जनवरी को मनाया जाता है) को मनाया जाता है। इस अवसर पर लोग प्रात: गंगा या अन्य पवित्र नदियों में स्नान करते हैं व सूर्य भगवान की आराधना करते हैं।

यह वह समय होता है जब सूर्य उत्तरायण होना प्रारंभ करता है। हिंदू पंचांग के अनुसार 14 जनवरी को सूर्य धनु राशि से मकर राशि में प्रवेश करता है।

ऋतु परिवर्तन की आहट और फसल अच्छी होने की प्रसन्नता में यह पर्व लगभग पूरे भारत में क्षेत्रीय रीति-रिवाज़ों और परंपराओं के साथ मनाया जाता है, जैसे- पंजाब में 'लोहड़ी', तमिलनाडु में 'पोंगल', असम में 'बिहू' तथा आंध्र प्रदेश में 'भोगी' के रूप में।

बसंत पंचमी: बसंत पंचमी, बसंत ऋतु के आगमन के उपलक्ष्य में मनाई जाती है। शीत ऋतु की समाप्ति व बसंत ऋतु के आगमन के समय माघ महीने के शुक्ल पक्ष की पंचमी को यह त्योहार मनाया जाता है। इस अवसर पर पूर्वी भारत, नेपाल व उत्तरी भारत में विद्या की देवी सरस्वती की पूजा की जाती है।

Think IAS

दृष्टि The Vision

Think Drishti

घर बैठे IAS/PCS की संपूर्ण तैयारी करने के लिये आपका स्वागत है

Drishti Learning App

पर

GET IT ON Google Play

अपने एंड्रॉयड फोन पर आज ही इंस्टॉल करें

ऐप की विशेषताएँ

- टीम दृष्टि द्वारा दी जाने वाली सभी सुविधाएँ एक ही मंच पर।
- ऑनलाइन, पेनड्राइव मोड में कक्षाएँ उपलब्ध।
- प्रिलिम्स और मेन्स की टेस्ट सीरीज़ भी ऐप के माध्यम से उपलब्ध।
- सभी पुस्तकें, मैगजीन, डिस्टेंस लर्निंग प्रोग्राम के नोट्स देखने व मंगवाने की सुविधा।

ऑनलाइन कोर्स की विशेषताएँ

- घर बैठे देश के सर्वोत्कृष्ट अध्यापकों से पढ़ने की सुविधा।
- अब दिल्ली या किसी बड़े शहर जाकर पढ़ने की मजबूरी नहीं।
- IAS और PCS के कोर्स उपलब्ध।
- ऑनलाइन कोर्स करने के बाद, क्लासरूम कोर्स में प्रवेश लेने पर शुल्क में विशेष छूट।
- हर क्लास अपनी सुविधा से 3 बार देखने की सुविधा।
- उत्तर लिखकर चेक कराने तथा संदेह-समाधान की व्यवस्था भी शीघ्र उपलब्ध।
- कई विषयों के कोर्स ऑनलाइन और पेनड्राइव मोड में भी उपलब्ध।

दृष्टि आई.ए.एस. (दिल्ली शाखा) का पता
641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-09
8448485519, 87501 87501, 011-47532596

दृष्टि आई.ए.एस. (प्रयागराज शाखा) का पता
ताशकंद मार्ग, निकट पत्रिका चौराहा, सिविल लाइन्स, प्रयागराज
8448485518, 8750187501, 8929439702

दृष्टि आई.ए.एस. (राजस्थान शाखा) का पता
प्लॉट नंबर-45 व 45-A, हर्ष टावर-2, मेन टोंक रोड़,
वसुंधरा कॉलोनी, जयपुर राजस्थान-302018
8448485518, 8750187501, 8929439702

दृष्टि लर्निंग ऐप पर उपलब्ध प्रमुख कोर्सेज़

IAS Foundation Course

सामान्य अध्ययन

प्रिलिम्स + मेन्स

- 1200+ घंटों की 500+ कक्षाएँ
- सभी टॉपिक के लिये प्रिंटेड नोट्स
- 3 वर्षों के लिये अन्य विशेष सुविधाएँ

IAS Foundation Course

General Studies

Prelims + Mains

- 400+ Classes of 1000+ hrs.
- Printed Notes of All Segments
- Other special facilities for 3 years

IAS Prelims Course

सामान्य अध्ययन

केवल प्रिलिम्स

- 500+ घंटों की कक्षाएँ
- 'क्विक बुक सीरीज़' की 8 पुस्तकें
- 2 वर्षों के लिये अन्य विशेष सुविधाएँ

IAS + UPPCS + BPSC Optional Subject

हिंदी साहित्य

द्वारा- डॉ. विकास दिव्यकीर्ति

- 400+ घंटों की कक्षाएँ
- पाठ्यक्रम में शामिल सभी पाठ्य-पुस्तकें तथा प्रिंटेड नोट्स
- 145 दैनिक अभ्यास प्रश्न और 18 टेस्ट पेपर (मॉडल उत्तर सहित)

BPSC Prelims Course

बिहार PCS

- 500+ घंटों की कक्षाएँ
- 'BPSC सीरीज़' की 8 पुस्तकें
- 2 वर्षों के लिये अन्य विशेष सुविधाएँ

RAS/RTS Prelims Course

राजस्थान PCS

- 500+ घंटों की कक्षाएँ
- 'RAS सीरीज़' की 8 पुस्तकें
- 2 वर्षों के लिये अन्य विशेष सुविधाएँ

अतिरिक्त जानकारी के लिये 9311406442 नंबर पर कॉल करें या वाट्सएप करें

विज़िट करें www.drishtiIAS.com

अपने फोन पर इंस्टॉल करें Drishti Learning App

641, 1st Floor, Dr. Mukherji Nagar, Delhi-9
Ph.: 011-47532596, 87501 87501
Website: www.drishtiias.com
E-mail: booksteam@groupdrishti.com

ISBN 978-81-947225-9-5

मूल्य : ₹ 480